

चतुर्थोऽध्यायः

(१४)

परमोत्तम ज्ञान

[१]

श्री भगवानुवाच

परं भूयः प्रवक्ष्यामि ज्ञानानां ज्ञानमुत्तमम् ।

यज्ज्ञात्वा मुनयः सर्वे परां सिद्धिमितो गताः ॥

इदं ज्ञानमुपाश्रित्य मम साधर्म्यमागताः ।

सर्वेऽपि नोपजायन्ते प्रलये न व्यथन्ति च ॥१॥

(यो. म० गो० १४ अ० १, २ श्लो०)

छप्पय

मुनि बोले भगवान्—पार्थ ! तू मेरो प्यारो ।

होयै कैसे छष्टि मुनि मुन प्यारो-प्यारो ॥

अति उत्तम यह ज्ञान सबहि ज्ञानवि ते उत्तम ।

परमज्ञान मुनि कहै मुक्ति साधन अति अनुपम ॥

जाई मुनि जन-जानिके, मुक्त जगत तैं वे भये ।

सब जगके परपंच सबि, परम सिद्ध वे यनि गये ॥

॥१॥ फिर श्रीभगवान् कहन लगे—“अजुन मैं फिर भी तुमसे जानों में उत्तम ज्ञान परमज्ञान को कहूँगा, जिस ज्ञानकर मय मुनि मय संसार से विमुक्त बनकर परम सिद्धि को प्राप्त होते हैं ॥१॥”
इस ज्ञान को प्राप्त करके भरे स्वर्ग को प्राप्त हुए छष्टि के भारभ से न तो उत्पन्न होते हैं और न प्रलय में व्यथित ही होते हैं ॥२॥

एक महात्मा थे, उन्होंने अपने एक जिज्ञासु भक्त को एक ओपधि देकर कहा—“इस ओपधि को खाना, साथ ही चावल मत खाना, रोटी ही खाना, क्योंकि रोटी ही अमृत है।”

जिज्ञासु ने ऐसा ही किया ओपधि से उन्हें लाभ हुआ। फिर दूसरी बार वे सख्त हुए, तब महात्मा ने दूसरी ओपधि देकर कहा—“देखो, रोटी मत खाना, केवल चावल खाना, चावल ही अमृत है।”

जिज्ञासु के मन में शंका हुई—“महात्माजी कभी तो रोटी को अमृत बताते हैं कभी चावल को। इनमें से अमृत कौन सा है।” तब आप ही आप उनके अन्तःकरण में समाधान हो गया—वास्तव में अमृत ही अमृत है, जो खाया जाय उसे अन्न कहते हैं (अस्तीति अन्नम्) खाने वाली सभी वस्तुएं अमृत हैं। देश कान तथा पाय के भेद से उनमें कोई वस्तु कभी अमृत का काम करती है, वही परिस्थिति वश विष बन जाती है।

इसी प्रकार ज्ञान तो मोक्षप्रद है ही। विना ज्ञान के मुक्ति संभव नहीं, किन्तु देश काल और पाय भेद से कोई ज्ञान का साधन किसी के अनुकूल पड़ता है वही परिस्थिति के अनुसार किसी को प्रतिकूल हो जाता है। जिस ज्ञान का—जिस साधन का—वर्णन करना हो पहिले जिज्ञासा बढ़ाने के लिये—रुचि उत्पन्न करने के निमित्त—उनको यथेष्ट प्रशंसा करे, उसके माहात्म्य का वर्णन करे। माहात्म्य सुनने से उस विषय में सहज अनुराग हो जाता है और फिर उसे जानने सुनने की उत्कट इच्छा होने लगती है, अतः तीनों गुणों के सम्बन्ध में बताने के पूर्व भगवान् पहिले इस ज्ञानी को प्रशंसा करते हैं। उसका माहात्म्य बताते हैं।

सूतजी कहते हैं—“मुनियो! जब श्रुति ने उन तीनों गुणों के सम्बन्ध में जानना चाहा, जिनके संग के कारण जीव को सत्

असत् योनियो में उत्पन्न होना पड़ता है तो उसने जिज्ञासा की—
“भगवान् ! ये गुण कौन-कौन से हैं, उन गुणों के लक्षण क्या हैं
और वे प्राणियों को कैसे बाँधते हैं। फिर इन गुणों से छुटकारा
कैसे पाया जा सकता है, जीव कैसे गुणातीत बन सकता है ?”

इस पर भगवान् ने कहा—“अर्जुन ! तुमने यह बहुत ही
सुन्दर प्रश्न किया। गुणों का ज्ञान और उन गुणों के बन्धनों से
निर्मुक्त होकर परमपद को प्राप्त कर लेना वास्तव में यही तो
ज्ञान है, यही समस्त ज्ञान के साधनों में सर्वोत्तम परमज्ञान-साधन
है। वैसे तो मैं तुमसे पीछे गुणों के सम्बन्ध में बसा हुआ हूँ,
किन्तु आगे पीछे का सम्बन्ध जुड़ाने के निमित्त-पुनः स्मरण
दिलाने के लिये मैं इस विषय को फिर से तुमसे कह रहा हूँ।”

अर्जुन ने पूछा—“प्रभो ! कैसा है यह ज्ञान ?”

भगवान् ने कहा—“जो मैं तुमसे ज्ञान का साधन कह रहा हूँ, वह
ज्ञान के समस्त साधनों में से सर्वोत्तम ज्ञान साधन है।”

अर्जुन ने पूछा—“उसे ज्ञान लेने से क्या होगा ? इसके ज्ञान
लेने का फल क्या है ?”

भगवान् ने कहा—“उसे ज्ञान लेने पर मुक्ति मिल जाती है,
परम पद भी प्राप्ति हो जाती है।”

अर्जुन ने कहा—“इस ज्ञान साधन के द्वारा किसी भी मुक्ति
मिलने की है ?”

भगवान् ने कहा—“एक ने नहीं घनेकों ने सभी ने इसी से
मुक्ति प्राप्त की है, जितने भी मुनि जन मुक्त हुए हैं उन सब
मुनियों ने इसी को जानकर उत्तम सिद्धि-पदार्थ मुक्ति प्राप्त
की है।”

अर्जुन ने पूछा—“उसका स्वरूप क्या है ?”

भगवान् ने कहा—“देखो, जीवों को जन्म के समय बहुत बृष्ट सृष्टि पड़ता है, मुख्य काल में भी असह्य वेदना होती है। जब सृष्टि काल आरंभ होता है, तब सभी जीव जो कल्प के अन्त में ब्रह्माजी की रात्रि के समय ब्रह्माजी के शरीर में लीन हो गये थे, वे पुनः उत्पन्न हो होकर अपने-अपने कर्मों को भोगने में पुनः उद्यत हो जाते हैं, सर्ग के आरम्भ में उत्पन्न होकर कष्ट भोगते हैं। प्रलय काल में भी जीवों को बड़ी व्यथा होती है। प्रलय काल में पहिले तो अनेकों वर्षों तक वृष्टि होती है, समस्त जीव जल-मग्न हो जाते हैं, सातों समुद्र एक हो जाते हैं, फिर सूर्य उग्रताप से तपते हैं सब जल की सोख लेते हैं, फिर भयंकर वायु चलती है, इस प्रकार प्रलयकाल में भी जीवों को महान् व्यथा होती है। निर्य हो सर्ग और प्रलय है। जन्म लेना सर्ग है, मृत्यु प्रलय है। जन्म मुख्य अज्ञान के कारण होती है। जो इस ज्ञान का आश्रय ले लेते हैं, वे भरे साधर्म्य को प्राप्त कर लेते हैं। जैसे मैं जन्म मृत्यु से रहित हूँ, वैसे ही वे मेरे शरणापन्न जीव जन्म मृत्यु से रहित बन जाते हैं। वे सर्ग होने पर उत्पन्न नहीं होते और प्रलयकाल में व्यथित नहीं होते।”

अर्जुन ने पूछा—“प्रभो ! सभी जीव प्रकृति पुरुष के संयोग से होते हैं पुरुष के योग को सभी अपने गर्भाशय में धारण करती है, तब विशु का जन्म होता है, यही समस्त भूतों की उत्पत्ति में गर्भ का आधान कौन करता है और गर्भाशय कौन है ?”

सूतजी कहते हैं—“मुनियो ! अर्जुन के इस प्रश्न का जो भगवान् उत्तर देंगे, उसका वरुण मैं आगे बख्शा।”

छप्पय

तोइ देउँ जो ज्ञान बढ़ोई सुखकर सुंदर ।
 जाको आश्रय लेत मिटे बौरासी चक्कर ॥
 जिनने धारन करयो ज्ञान यह अदभुत अदुषम ।
 मम त्वत्प कूँ प्राप्त भये साधक बहु उत्तम ॥
 सृष्टि आदि में फेरि वै, नहीं जनम धारन करे ।
 अलकाल में व्यथित नहिँ, वनि विमुक्त जागै तरे ॥



प्रकृति योनि में भगवान् गर्भाधान करते हैं

[२]

मम योनिमहद्ब्रह्म तस्मिन्गर्भं दधाम्यहम् ।
संभवः सर्वभूतानां ततो भवति भारत ॥
सर्वयोनिषु कौन्तेय मूर्तयः संभवन्ति याः ।
तासां ब्रह्म महद्दपोनिरहं बीजप्रदः पिता ॥७॥
(श्री भग० गी० १४ अ० ३, ४ श्लो०)

छप्पय

भारत ! जो है महत् ब्रह्म सो प्रकृति कहावे ।
वही जगत का मूल योनि भूतनि कहावे ॥
वही गरम इस्थान गरम मैं करि इस्थापन ।
सब चेतन सद्गुदाय बीज मेरी अति पावन ॥
जड़ चेतन संयोग तैं, जीव चराचर होहैं सब ।
हैं सबको साक्षी सदा, जग माता-पितृ सुनहु अब ॥

* हे प्रभु ! मेरी जो महत् ब्रह्म रूपा प्रकृति है, वह गर्भस्थली है, उसमें मैं गर्भ को स्थापन करता हूँ, उससे सभी प्राणियों की उत्पत्ति होती है ॥३॥

हे कौन्तेय ! सब योनियों में जो मूर्तियाँ बनती हैं, उन सबकी विगुणमयी प्रकृति योनि है, मैं बीज स्थापित करने वाला पिता हूँ ॥४॥

यह संसार की सृष्टि द्वैत के बिना संभव नहीं। दो मिलकर ही सृष्टि होती है। रज और वीर्य का जब पात्र में आधान होता है, तभी गर्भ की वृद्धि होती है। जगत् की जितनी भी ८४ लाख योनियाँ हैं, उनमें तभी वृद्धि होगी जब उनमें स्वामी वीर्य का आधान करेगा। गर्भ की स्थापना करेगा। जब तक भ्रूणी सृष्टि आरम्भ नहीं हुई थी, उसके पूर्व संकल्पीय सृष्टि थी। यद्यपि संकल्प करते थे, कि हमारे पुत्र हों, वृत्त संकल्प करते ही पुत्र हो जाता था। किन्तु इस संकल्पीय सृष्टि में आकर्षण नहीं था, मोह ममता तथा वासना नहीं थी। इसीलिये ब्रह्माजी की इच्छा-नुसार सृष्टि की वृद्धि नहीं हुई। तब तो ब्रह्मादेव ब्रित्तित हुए, तब उन्होंने नारी की रचना की, जिससे सृष्टि की वृद्धि हुई। खो और पुरुष इन दोनों की-मिश्रण-जोड़ा कहते हैं। योनि आधार है वीर्य आधेय है। जैसे घृत की पात्र दोनों आदि में रखते हैं। दोनों में प्रमुखता तो वीर्य की ही है, इसीलिये म्यायालयों में हाटों में, बाटों में सर्वत्र यही पुछा जाता है—'तुम्हारा क्या नाम है?' तुम्हारे पिता का क्या नाम है? माता का नाम कोई नहीं पुछता। यही बात प्राकाश बाणी ने भी कही थी।

महाराज दुष्यन्त ने महर्षि कश्यप के आश्रम में महर्षि की अनुपस्थिति में उनकी पालिता पुत्री शकुन्तला से गान्धर्व विधि से विवाह करके वही वन में उसके गर्भाधान किया था। राजा के चले आने के पश्चात् कान्यकुब्ज में शकुन्तला ने एक पुत्र रत्न की उत्पन्न किया। जो विश्वविख्यात चक्रवर्ती महाराजा भरत हुए जिनके नाम से इस देश का नाम भरत खण्ड हुआ।

राजा दुष्यन्त ने शकुन्तला का परिग्रहण करके विदा होने समय उसे आश्विन दिन दिया था, कि शीघ्र ही मैं तुम्हें बुलाने की सेवा सहित अपने मंत्री को भेजूँगा, किन्तु बहुत दिनों तक राजा

ने कोई खोज खबर ही नहीं ली, कोई संदेश तक नहीं भेजा, सब महर्षि कण्व ने अपने शिष्यों के साथ पुत्र सहित शकुन्तला को महाराजा दुष्यन्त के यहाँ भेज दिया।

भरी सभा में जब शकुन्तला ने राजा ने कहा—“मेरे साथ आपने वणवाश्रम में गान्धर्व विवाह किया था, मैं आपकी धर्म पत्नी हूँ, यह आपके धर्म से उत्पन्न आपका पुत्र है, इसे आप ग्रहण करें।” इस पर राजा ने स्पष्ट शब्दों में मना कर दिया कि मैं तुम्हें जानता तक नहीं। तुम असत्य बोल रही हो, न जाने तुम किसके पुत्र को लाकर मेरा पुत्र बता रही हो। उस समय सबकी सुनवाई देने वाली आकाशवाणी हुई। उस वाणी का कोई वक्ता नहीं दीखता था, वाणी आकाश से आ रही थी और सबकी सुनवाई दे रही थी, आकाशवाणी ने कहा—“पुत्र उत्पन्न करने में माता तो केवल लुहार की धौकरी के समान है। वास्तव में पुत्र तो पिता का ही होता है। क्योंकि स्वयं पिता ही अपने आप पुत्र बनकर प्रकट होता है। इसलिये राजन्! तुम शकुन्तला का अपमान मत करो। इस अपने पुत्र का भरण पोषण करो। वंश की वृद्धि करने वाला सत् पुत्र अपने पिता को नरक से उबार लेता है। शकुन्तला का कहना सर्वथा सत्य है। तुमने इस गर्भ का आधान किया है।”

वास्तव में माता का गर्भाशय तो एक घली मात्र है, उसमें जो गर्भ धारण करता है, बीज स्थापित करता है, उस पिता की ही प्राधान्यता है। वही पालक उत्पादक तथा जनक कहलाता है। इस जगत् की भगवाद् ही उत्पन्न करते हैं। इसीलिये वे परम पालक सबके उत्पादक स्थावर जगत् के जनक तथा जगत् पिता कहलाते हैं। प्रकृति में वे ही गर्भ स्थापित करते हैं।

सूतजा कहते हैं—“मुनियो! जब भर्तृ न ने समस्त सृष्टि की

उत्पत्ति में कारण कौन है, ऐसी जिज्ञासा की तो भगवान् ने कहा—“उत्पत्ति तो माता और पिता दोनों के संयोग से होती है।”

इस पर अर्जुन ने पूछा—“इस जगत् के पिता कौन हैं?”

भगवान् ने कहा—“इस सम्पूर्ण चराचर जगत् का एकमात्र पिता तो मैं ही हूँ।”

अर्जुन ने पूछा—“आपके गर्भ स्थापन का स्थान भी तो कोई होगा?”

भगवान् ने कहा—“हाँ, अवश्य, गर्भस्थापन स्थान के बिना गर्भाधान कैसे हो सकता है। जिसे प्रकृति कहते हैं, कोई उसे महान् भी कहते हैं, जो महत् ब्रह्म के नाम से भी कही जाती है वही मेरा गर्भ स्थापन का स्थान-योनि-है। उसी में मैं गर्भ स्थापित करता हूँ।”

अर्जुन ने पूछा—“उसमें उत्पन्न कौन होता है?”

भगवान् ने कहा—“हे भारत! उसी गर्भ के द्वारा समस्त भूतों की उत्पत्ति होती है।”

अर्जुन ने पूछा—“उस धीर्य से मनुष्यों की ही उत्पत्ति होती है, या अन्य योनियों वाले जीवों की भी?”

भगवान् ने कहा—“तुम संसार में जितनी भी मूर्तियों को देख रहे हो, सुन रहे हो। समस्त योनियों में जितने भी संस्थान हैं, आकृतियाँ हैं—उनकी योनि महद्ब्रह्म अर्थात् प्रकृति ही है। और उस प्रकृति के गर्भस्थापन स्थान में—देवल में अकेला ही धीर्य स्थापन करने वाला पिता है। देवता, पितर, मनुष्य, पशु, पक्षी, मृग, सरीसृप, वृक्ष, लता मूल्य जितने भी जराहुज, घण्डज, स्त्रेदज उद्भिज आदि आकृतियाँ हैं, संस्थान हैं, शरीर हैं उनकी माता तो प्रकृति, महद्ब्रह्म है। और बीज प्रदाता पिता मैं

परमेश्वर है। इन दोनों के संयोग से ही स्यावर, जंगम, चर, अचर, जड़, चैतन्य सभी की उत्पत्ति है। इन समस्त जीवों को तीनों गुण ही जड़ते हुए हैं। इसी में ये जीव बंधे रहते हैं, माया के जाल से मुक्त नहीं होती। प्रकृति के तीनों गुण ही बंधन का कारण हैं।”

अर्जुन ने पूछा—“भगवन् ! ये तीनों गुण जीवों को कैसे बंधे रहते हैं। इन गुणों में प्राणी का संग किस प्रकार हो जाता है ये जीव को किस कारण से फँसाते हैं, उन गुणों के नाम और उनके कार्य मुझे बताइये।”

सूतजी कहते हैं—“मुनियो ! गुणों के सम्बन्ध में इतने प्रश्न करने पर श्रीभगवान् क्रमशः इन सभी प्रश्नों का जैसे उत्तर देंगे, पहिले गुणों का नाम बताकर, फिर जिस प्रकार ये गुण जीवों को बंधते हैं उनका वर्णन जैसे भगवान् करेंगे, उस कथा प्रसंग को मैं आगे वर्णन करूँगा, आशा है आप एकाग्रचित्त करके इस सुदृढानमय प्रसंग को प्रेम पूर्वक सुनने की कृपा करेंगे।”

दृश्य

जग में नाना मूर्ति प्रकृति तिनकी है माता ।
प्रकृति कौन, को पुरुष, जेथारथ जाने जाता ॥
सब मोनिनि में मिश्र भिन्न आकृति तनुचारी ॥
प्रकृति माहि उल्लस होहि जवनी तिति धारी ॥
महद्योनि ता प्रकृति में, वीरज थापन करि बसत ।
माता वह तो पिता ही, वीर्य प्रदातां संच कहत ॥



तीनों गुण और सत्त्व का बन्धन

[३]

सत्त्वं रजस्तम इति गुणाः प्रकृतिसंभवाः ।
निबन्धन्ति महाबाहो देहे देहिनमव्ययम् ॥
तत्र सत्त्वं निर्मलत्वात्प्रकाशकमनामयम् ।
सुखसङ्गेन बध्नाति ज्ञानसङ्गेन चानय ॥४॥
(धीमं यो० १४ अ०, ४, ६ श्लो०)

छप्पय

देहनि में जो जीव आतमा चेतन देही ।
बन्धन तो वह रहित जयारम है नहीं गेही ॥
अव्यय ताकी रूप योंचि ताकें गुन लेवै ।
प्रकृति पुत्र गुन तीनि संग ताको कर लेवै ॥
तीनिहु रज, तम, सत्त्व जा, बाँधत देही देह में ।
ममता तब फिर करतु है, सुत दारा अरु गेह में ॥

ॐ हे महाबाहो ! सत्त्व, रज और तम ये तीनों गुण प्रकृति में उत्पन्न होते हैं, ये ही गुण कविनाथी देहों को देह में बाँधते हैं ॥४॥
हे धनप ! इनमें से सर्वगुण प्रकाशक तथा निर्दोष है । मल रहित होने के कारण गुण की प्रामाणिक और ज्ञान की साधक में बँधता है ॥६॥

तीनों गुणों की साम्यावस्था का नाम प्रकृति है। जब काल क्रम से गुण साम्य न रहकर असाध्य बन जाते हैं, तब वे गुण पृथक्-पृथक् हो जाते हैं, प्रकृति में विकृति होने पर ही गुण अपना काय करने लगते हैं। गुण कहते हैं रज्जु की, डोरी की। रस्सी का काम होता है, बाँधना। बन्धन रस्सी से ही होता है। जैसी रस्सी होगी वैसा ही बन्धन भी होगा। यदि रस्सी रेशम की है, तो उसका बन्धन मुटु सुखे स्पर्श वाला तथा सरल होगा। यदि रस्सी सूत की है, तो उसका बन्धन रेशम की अपेक्षा कठोर दृढ़ तथा कर्कश होगा। उसका स्पर्श दुख मिश्रित सुखद होगा उसमें अपेक्षा कृत कठोरता होगी और यदि रस्सी मूँज की काँस की अथवा दाम की हुई, तो उसका बन्धन अत्यन्त कठिन दुखद और परम दृढ़ होगा। बन्धन चाहे रेशम का हो, सूत का हो अथवा मूँज का हो, बन्धन तो बन्धन ही है। इसी-लिये साधकों के समस्त प्रयत्न गुणातीत होने के ही निमित्त होते हैं। गुण तो बन्धन के ही कारण हैं। अतः इन गुणों से परिचित होना अत्यावश्यक है, कीन-सा गुण किस प्रकार बाँधता है, गुणातीत होने के लिये इसे समझना अनिवार्य है। इसीलिये भगवान् ने गुणत्रय विभाग योग का वर्णन किया है।

मृतजी कहते हैं—“मुनियो ! जब भ्रजुं न ने गुणों के सम्बन्ध में कई प्रश्न किये, तब भगवान् क्रमशः सबका उत्तर देते हुए सब प्रश्न गुणों का परिचय कराते हैं—भगवान् ने कहा—“हे महाबाहो ! जिनको ‘बाढ़ए’ छोटी होती है, दुर्बल होती है, वे बन्धन को तोड़ नहीं सकते, किन्तु तुम तो विशाल और बलवान् बाढ़एँ बाले हो, तुम्हारे लिये बन्धन क्या कर सकता है। तुम तो अव्यय हो देह नहीं, देहो हो ये सब गुण तुम्हारा क्या बिगाड़ सकते हैं।”

अर्जुन ने पूछा—“भगवन् ! सब गुण कौन-कौन से हैं ?”
भगवान् ने कहा—“गुण तीन हैं, उनके नाम सत्त्वगुण, रजो-
गुण और तमोगुण ये ही हैं।”

अर्जुन ने पूछा—“वया ये गुण पुरुष से उत्पन्न होते हैं ?”

भगवान् ने कहा—“नहीं भैया, पुरुष तो अव्यय है, अनादि
और निर्गुण है, शरीर में भले ही रहता भी है, फिर भी वह
अक्रिय बना रहता है। ये गुण प्रकृति से उत्पन्न होने वाले हैं।”

अर्जुन ने पूछा—“इन गुणों का कार्य कौन-सा है ?”

भगवान् ने कहा—“हे महाबाहो ! इन गुणों का काम
बाँधना है। ये गुण ही निर्विकार देही को देह में बाँध
देते हैं।”

अर्जुन ने पूछा—“निर्विकार देही को ये गुण शरीर में कैसे
बाँध लेते हैं ?”

भगवान् ने कहा—“यह देह तो प्रकृति का कार्य भूत और
इन्द्रियों का संघात माय है। अग्न वशा निर्विकार होने पर भी
अपने को विकारवान्-सा अनुभव करने लगता है, गुणों के कारण
ही अपने को बन्धनयुक्त अनुभव करने लगता है।”

अर्जुन ने पूछा—“कौन-सा गुण किस-सम के द्वारा देही को
बाँधता है ?”

भगवान् ने कहा—“तीनों गुणों में सत्त्व गुण उत्तम है, रजो
गुण मध्यम है और तमोगुण अधम है। सर्वप्रथम सत्त्व गुण
को ही ले लीजिये। इन तीनों गुणों में सत्त्व गुण अधिक निर्मल
है। निर्मल होने के कारण इसका बन्धन सुखद होता है और
ज्ञानमय तथा प्रकाशमय होता है। आमय अर्थात् सुखद न
होकर सुख की अभिव्यक्ति करने वाला होता है। यह सत्त्व गुण
जीव को बाँधता तो अवश्य है, किन्तु अन्धकारमय नहीं बना

देता प्रकाशमय बन्धन है और सुखद बन्धन है।- सुख और ज्ञान के संग से बाँधता है। तमोगुण के कारण जो अन्धकार का आवरण छा जाता है, उस आवरण को हटाने वाला प्रकाश प्रदान करने वाला है। यह ज्ञान को डकता नहीं चेतन्य को प्रकाशित कर देता है, इसी कारण सत्त्व गुण को श्रेष्ठ कहा गया है। हे निष्पाप ! तुम तो पाप रहित हो, अनप हो।”

अर्जुन ने पूछा—“भगवन् ! आपने जो रजोगुण को मध्यम बताया वह देही को किस प्रकार बाँधता है ? और तमोगुण जो अधम गुण है, वह किस प्रकार बाँधता है ?”

सूतजी कहते हैं—“मुनियो ! भगवान् अब जैसे रजोगुण और तमोगुण के सम्बन्ध में बतावेंगे, उस प्रसंग को मैं छोड़ कहूँगा।”

छप्पय

प्रकृति 'पुत्र' ये तीनि 'अधम' कोई है उरम ।
 कौंये निज-निज रूप अधम उत्तम अरु मध्यम ॥
 इनि तीनिनि महँ सत्य परम निरमल प्रकाशमय ।
 अपिक न रहे पिकार स्वच्छ अति सुधर अनामय ॥
 वह बाँधत सुख संग तैं, कोमल रेशम रज्जु तैं ।
 अरजुन ! तू निष्पाप है, और ज्ञानके संग तैं ।



रज और तम प्राणियों को कैसे बाँधते हैं ?

[४]

रजो रागात्मकं विद्धि तृष्णासङ्गसमुद्भवम् ।
तन्निवृत्ताति कान्तेय कर्मसङ्गेन देहिनाम् ॥
तमस्त्वज्ञानजं विद्धि मोहनं सर्वदेहिनाम् ।
प्रमादात्तस्य निद्रामिस्तन्निवृत्ताति भारत ॥३३॥
(श्री० या० नी० १४ अ० ५, द श्लो०)

छप्पय

श्रेष्ठ सतीशुन कक्षी रजोगुन छोटी माई ।
वैसी निरमल नहीं करे बन्धन बतुराई ॥
राग रूप रज कक्षी चिप कूँ अति रंगि देवे ।
तृष्णा अरु आसक्ति बाँधि तिनितै यह लेने ॥
कुत्तीनन्दन ! रजोगुन, बाँधत जीवहिं शक्ति तै ।
बन्धन ताको सुदृढ़ अति, करवाति की आसक्ति तै ॥

* हे कान्तेय ! रजोगुण को तुम समस्त तृष्णा और आसक्ति से उत्पन्न समझो । यह देशी को कर्म मग से बाँधता है ॥३३॥

हे भारत ! ममी प्राणियों को मोहित करने वाला तमोगुण भ्रमान से उत्पन्न हुआ जानो । वह प्रमाद, निद्रा, और भालस्य से बाँधता है ॥३३॥

यह संसार रूप एक नदी है, इसमें जल रूप यह जीव है। जीव स्थिर है शान्त है, अगमनशील है। जब जल में गुण रूप प्रवाह आ जाता है, तो जल गतिशील हो जाता है, चलने लगता है, बहने लगता है, उसमें त्रिया होने लगती है। तालाब में जहाँ प्रवाह नहीं बहता वह शान्त गम्भीर स्थिर बना रहता है। गुणों का प्रवाह ही जल में गति प्रदान करता है। सत्त्व गुण में श्रीर तमोगुण में गति नहीं। सत्त्व का घोर तप्त की ऊपर से देखने में गति एक सी ही है। सत्त्वगुण सम्पन्न व्यक्ति भी बिना कर्म किये शान्त बैठा रहेगा और तमोगुणों में कर्मों में विशेष रत नहीं रहेगा, ऊपर से देखने में दोनों में कोई अन्तर प्रतीत न होगा, किन्तु सत्त्वगुण वाला ज्ञान के कारण प्रकाश के कारण मल रहित होने से शान्त गम्भीर तथा स्थिर रहेगा। तमोगुणों अज्ञान के कारण, मल के कारण आलस्य में प्रमाद में मथवा निद्रा में निमग्न होने से निष्क्रिय बना बैठा रहेगा। इन दोनों का विशेष कार्य रत होने का स्वभाव नहीं।

कर्मों में विशेष प्रवृत्ति तो रजोगुण द्वारा ही होती है, इसी-लिये सत्त्वगुण के अधिष्ठातृ विष्णु सृष्टि रचना में प्रवृत्त नहीं होते और तमोगुण के अधिष्ठातृ देव रुद्र भी सृष्टि रचना में मन नहीं लगाते। ये जो रजोगुण के अधिष्ठातृ देव ब्रह्मा हैं, उन्हें ही सृष्टि की रात्रि-दिन चिन्ता सगी रहती है, कैसे सृष्टि बड़े, कैसे संसार चक्र चलता रहे, वे रात्रि दिन-इसके लिये प्रयत्नशील बने रहते हैं, रज कहते हैं राग की। जिसके द्वारा अकर्ता पुरुष विषयों के रंग में रंग कर बासना युक्त बन जाय, उसे विषयों के भोग की स्पृहा उत्पन्न हो जाय, संसार की प्रवाहित करने वाला, रजोगुण ही है। इसीलिये सायक को सर्व प्रथम तो आलस्य प्रमाद और निद्रा आदि तमोगुणों प्रवृत्तियों पर

रज और तम प्राणियों को कैसे बाँधते हैं ? ३५

विजय प्राप्त करके सत्कर्मों में प्रवृत्त होना चाहिये और फिर सत्कर्मों में प्रवृत्त होने पर भी उनके फल की आशा न रखना चाहिये। कर्म करना कोई बुरा नहीं है, केवल कर्म करना ही बन्धन का कारण नहीं है। प्राणी बँधता तो तब है जब कर्म करके उसके फल की स्पृहा हो। कर्म फल में आसक्ति होने से उस विषय में मन अनुरक्षित हो जाता है। फल की इच्छा या स्पृहा ही दृढ़तर रज्जु को तैयार करती है। उसी में प्राणी बँध जाता है। अतः भगवत् भक्ति के निमित्त किये हुए कर्म बन्धन के कारण नहीं होते। जो भी कुछ कर्म करे उसे भगवत् धर्पण कर दे। उन कर्मों को प्रभु प्रीत्यर्थ ही करे। भगवान् के निमित्त जो कर्म होते हैं उनके फल को भगवान् भोगते हैं वे संसारी कामना-इच्छा-अदया स्पृहा नहीं उत्पन्न करते, वे रामोद्युग के भी कर्म नहीं कहाते। वे कर्म तो निगुण कर्म हैं, क्योंकि निगुण परमात्मा के निमित्त किये गये हैं।

सूतजी कहते हैं—“मुनियो ! जब अर्जुन ने ‘रजोगुण और तमोगुण पुरुष को किस प्रकार बाँधता है’ यह प्रश्न किया, तो उसका उत्तर देते हुए भगवान् कहने लगे—‘हे कुन्ती तनय ! रजोगुण को तुम रागात्मक जानो।’”

अर्जुन ने पूछा—“रागात्मक क्या ?”

भगवान् ने कहा—“रागात्मक माने रँगा जाना यर्थात् जिस के द्वारा पुरुष विषयों में रँगा जाय उसे राग कहते हैं। उसी का नाम स्पृहा है। काम, इच्छा, गर्व ये भी राग के ही नाम हैं। इसकी संतानें हैं एक तुष्णा और दूसरी आसंग।”

अर्जुन ने पूछा—“तुष्णा किसे कहते हैं ?”

भगवान् ने कहा—“जो वस्तु हमारे पास नहीं है या कम है उसे प्राप्त करना अधिकाधिक बढ़ाने की इच्छा करने को तुष्णा

कहते हैं। यह तृष्णा अधिकाधिक बढ़ने वाली होती है, यह कभी वृद्धा नहीं होती, सदा तरुणी बनी रहती है। दूसरी सन्तान है आसङ्ग।”

अर्जुन ने पूछा—“आसङ्ग किसे कहते हैं?”

भगवान् ने कहा—“जो वस्तुएँ प्राप्त हो गयी हैं वे हमारे ही पास सुरक्षित रहें, उन्हें कोई दूसरा लेने न पावे। इस प्रकार प्राप्त वस्तु के संरक्षण को इच्छा को आसङ्ग कहते हैं। इस प्रकार रजोगुण से तृष्णा और आसङ्ग ये दो उत्पन्न होते हैं।”

अर्जुन ने पूछा—“रजोगुण बाँधता कैसे है?”

भगवान् ने कहा—कर्मों में प्रवृत्ति का कारण रजोगुण ही है। अतः रजोगुण से जब विषयों में आसक्ति हो जाती है, तो विषय भागों को संग्रह करने की इच्छा होती है। आस-पास दूसरे भी विषयवासक्त पुरुष हैं, तो यह आसक्ति मन में बनी ही रहती है, कि ऐसा न हो मेरी उपभोग की वस्तुओं को कोई दूसरा ले जाय, अतः दूसरों से सचेत रहना पड़ता है। जिससे मैंने पुरुषार्थ से पदा किया है, उसका उपभोग भी मैं ही करूँ। इस प्रकार कर्मों में संग या आसक्ति बढ़ जाती है। सदा कुछ न कुछ करते रहो और उनके फलों को भोगते रहो ऐसा अभिनिवेश हो जाना ही संगता है। कर्मों की आसक्ति ही रजोगुण का बन्धन है। मैं कर्मों का कर्ता और फल का भोक्ता हूँ इसी प्रकार के ग्रहणकार से रजोगुण बाँध लेता है।”

अर्जुन ने पूछा—“तीसरा तमोगुण कैसे बाँधता है?”

भगवान् ने कहा—जैसे सखगुण से ज्ञान उत्पन्न होता है रजोगुण से विषयों में लोभ बढ़ता है उसी प्रकार तम से मोह बढ़ता है। ये तमोगुण अज्ञान जनित है। यह तमोगुण ही

रज और तम प्राणियों को कैसे बाँधते हैं ? ३७

समस्त प्राणियों को मोहित करने वाला है। इसके भी तीनों सन्तानें हैं।”

अर्जुन ने पूछा—“तमोगुण की तीन सन्तानें कौन-कौन सी हैं ?”

भगवान् ने कहा—“तमोगुण की सन्तानों का नाम है निद्रा, आलस्य और प्रमाद।”

अर्जुन ने पूछा—“निद्रा क्या ?”

भगवान् ने कहा—सत्त्वगुण से प्रकाश होता है, सद् असद् का विवेक होता है ज्ञान होता है, रजोगुण कर्मों में प्रवृत्त करता है। निद्रा में न तो ज्ञान तथा विवेक रहता है, और न कर्मों में प्रवृत्ति ही होती है। मन और अज्ञान में लीन हो जाता है इसी अज्ञान जन्म सुषुप्ति का नाम निद्रा है।”

अर्जुन ने पूछा—“आलस्य किसे कहते हैं ?”

भगवान् ने कहा—“कर्मों में प्रवृत्ति न होने की दृष्टि को आलस्य कहते हैं। कर्तव्य कर्मों में प्रवृत्ति न होकर असमर्थ बने पड़े रहने का नाम आलस्य है। यह रजोगुण का कार्य जो प्रवृत्ति है, उसका विरोधी है।”

अर्जुन ने पूछा—“प्रमाद किसे कहते हैं ?”

भगवान् ने कहा—“जिसे विवेक और प्रकाश न होकर अविवेक और अन्धकार हो उसका नाम प्रमाद है। सन्ध्या-चन्दन नित्य नैमित्तिक कार्य करते हैं, प्रमादवश उनका स्मरण ही न करना अन्धकार में पड़े पड़े असमर्थ की भाँति समय बिताते रहना यही प्रमाद है, यह प्रमाद सत्त्वगुण के जो ज्ञान और प्रकाश गुण हैं उनका विरोधी होता है। इस प्रकार तमोगुण निद्रा आलस्य और प्रमाद रूपी अपनी सन्तानों द्वारा सत्त्वगुण

३८ श्री भागवत दर्शन भागवती कथा, खण्ड ७२:

सया रजोगुण दोनों के कार्यों का विरोधी होता हुआ प्राणियों को अज्ञान रूपी रस्सी से बाँध लेता है ।"

शर्जुन ने पूछा—“ये गुण प्राणियों को किस-किस कार्य में लगाते हैं, और सब गुण साथ ही कार्य करते हैं या एक दूसरे को दबाकर अपना कार्य करते हैं ?

सूतजी कहते हैं—“मुनियो ! शर्जुन के पूछने पर भगवान् जैसे उसके प्रश्न का उत्तर देंगे उसका वर्णन मैं आगे कहूँगा ।”

छप्पय.

तम है तीसर, पुत्र कूर अति ही अज्ञानी ।
बाँधे जीवनि बहुत बड़ी मूरख अमिमानी ॥
अमिमानी जो देह तिगहि अति मोहित करिके ।
पेदा यह अज्ञान भाव ते होवे बिरिके ॥
रस्सी जाकी तीनि है, बाँधत जीवहि तिगहि ते ।
भारत ! पहिले, गीद ते, आलस और मयाद ते ॥



कौन सा गुण देही को किस कार्य में लगाता है ?

[५]

सत्त्वं सुखे सञ्जयति रजः कर्मणि भारत ।

ज्ञानमावृत्त्य तु तमः प्रमादे सञ्जयत्युत ॥

रजस्तमश्चामिभूय सत्त्वं भवति भारत ।

रजः सत्त्वं तमश्चैव तमः सत्त्वं रजस्तथा ॥*

(श्री. भा० गी० १४ अ० ६, १० श्लो०)

छप्पय

तीनिहु गुन के काज तीनि ही वेद बताये ।

निज स्वभाव अनुकूल काज करि पुरुष संसाये ॥

यदि जायै गुन सत्त्वं पार्थ ! तो तुल उपजाये ।

है जायै आपिसय रजोगुन कर्म कराये ॥

यदि तमोगुन दुरत ही, तब ज्ञानहिं टकिं लैत है ।

बदले में वह पुरुष कू, नित प्रमाद कू देत है ॥

* हे भारत ! सत्त्वगुण सुख में प्रवृत्त करना है, रजोगुण कर्म में लगाता है और तमोगुण ज्ञान को ढककर प्रमाद में प्रेरित करता है ॥६॥

हे भारत रजोगुण, तमोगुण को अच्छादित करके, सत्त्व की शुद्धि करता है, तथा रजोगुण सत्त्व को दबा कर तमोगुण को बढ़ावा है । इसी प्रकार तम और सत्त्व को दबाकर रजोगुण बढ़ता है ॥१०॥

जैसे शरीर में वात, पित्त और कफ तीनों हो सदा रहकर जब शरीर की रक्षा करते हैं। तब ये गुण कहाते हैं और ये ही जब पकुपित हो जाते हैं, तो इनकी दोष संज्ञा हो जाती है, वैसे ही शरीर धारण के लिये सत्त्व, रज और तम ये तीनों गुण आवश्यक हैं, किन्तु जब दोषगुणों को दबाकर एक गुण प्रबल हो जाता है, तो शरीर में उसी की प्राधान्यता मानी जाती है, उस समय प्राणी उसी गुण के वशीभूत होकर उसी गुण के समान कार्य करने लगता है। ऐसा कोई शरीर नहीं जिसमें सत्त्व, रज तथा तम ये तीनों गुण न हों। देश, काल, पात्र तथा अन्यान्य परिस्थियों के अनुसार गुण घटते-बढ़ते रहते हैं।

कोई तो जन्मजात सत्त्वगुण वाले, रजोगुणों अथवा तमोगुणों प्रकृति के होते हैं। सत्त्वगुण प्रधान गुणों के शरीर में रजोगुण तथा तमोगुण न रहता हो, सो भी बात नहीं। सब शरीरों में सर्वदा तीनों ही गुण विद्यमान रहते हैं, किन्तु जिस गुण का प्राधान्य रहेगा, उसी गुण वाला वह व्यक्ति कहलाता है। तमोगुणों सदा तमोगुण ही प्रधान बना रहे सो भी बात नहीं, देश, काल, पात्र, आहार तथा परिस्थितियों के कारण विपर्यय भी हो जाते हैं।

जैसे कोई घोर तमोगुणों या रजोगुणों है, किसी पुरख पवित्र देश में साधु सन्तों के स्थान में चला जाएगा, तो उस देश की पवित्रता का पावनता का उस पर प्रभाव पड़ेगा। उसके सत्त्व की वही देश के प्रभाव से वृद्धि होगी, रज तम दब जायेंगे।

इसी प्रकार प्रातःकाल में प्रायः पित्त की शक्ति सत्त्व प्रधान रहती है, मध्याह्न में रजोगुण प्रधान और सायंकाल में तमोगुण प्रधान हो जाती है। इसी प्रकार विशेष-विशेष वर्गों पर विशेष-विशेष प्रती के काल में गुण विपर्यय हो जाते हैं।

कौन सा गुण देही को किस काम में लगाता है ? ४१

संग के प्रभाव से भी प्रकृति में परिवर्तन हो जाता है। कोई तमोगुणी या रजोगुणी पुरुष है। किसी साधु संत महात्मा का संग हो गया, उसका रज तम दब जाता है सत्त्व का उदय हो जाता है।

गुणों का प्रभाव अन्न के कारण भी बदल जाता है। जेसा खाद्य अन्न वैसा बने मन। शुद्ध सात्त्विक न्यायोपाजित बने अन्न में, भगवत् प्रसादी अन्न से बुद्धि सात्त्विकी हो जाती है, रज प्रधान अन्न भोजन से रजोगुणी तथा तमोगुणी अन्न खाने से बुद्धि तमोगुणी बन जाती है। इस विषय के अनन्त उदाहरण हैं।

एक वहे सत्त्वगुण प्रधान महात्मा थे। वे एक धनिक के यहाँ जाया आया करते थे। वह धनिक अन्न की तस्करी करता था। राज के अधिकारियों से मिलकर उन्हें उँकोव-धूस-देकर अन्न चुरा लाता इससे उसे लाखों की आय होती थी। एक दिन उसके यहाँ चोरी के चावलों की खोर बनी। उन महात्मा ने भी वह खायी। इससे उनकी लोभ वृत्ति जागृत हुई। लोगों की आँख बचाकर देश सहस्र रुपये चुरा लाये। नाकर अपनी कुटिया में रख दिये।

इधर धनिक के यहाँ रुपयों की ढुंढाई हुई। सेवक भृत्य तथा अन्य लोग पर सन्देह हुआ। सेवकों को डराया घमकाया जाने लगा। महात्माजी पर तो किसी का सन्देह ही नहीं था।

प्रातःकाल जब वह चोरी का अन्न शीव मार्ग से निकल गया। शीव स्नान से निवृत्त होकर उपःकाल-अमृत काल में जब वे भगवान् के भजन में बैठे तो सत्त्वगुण की बुद्धि के कारण उनकी बुद्धि शुद्ध हुई। वे सोचने लगे—हाय ! मैंने कैसा अनर्थ किया। उस धनिक के घर के लोग मेरे ऊपर कितना विश्वास रखते हैं। मैंने उनके साथ कैसा विश्वासघात किया। मैं निष्किंचन

जिस्क साधु, मैं इन स्त्रियों को लेकर क्या करूँगा, धन तो प्रायः अनर्थ का ही कारण होता है, चोरी का यथार्थ अपराधी मैं हूँ, वहाँ मेवकों भृत्यों आदि को दंड दिया जा रहा होगा।

इन विचारों के आते ही, वे भजन से उठ पड़े रुपये लेकर सीधे सेठ के समीप पहुँचे। वहाँ सेवकों पर मार पड़ रही थी। महात्माजी ने कहा—“धरे, भाई इन निरपराध सेवकों को क्यों मारते हो, मुझे मारो यथाये चोर तो मैं हूँ, यह कहकर उन्होंने पूरे रुपये सेठ को दे दिये।”

सेठ ने कहा—“स्वामीजी हम तो आपको बहुत दिनों से जानते हैं, आप तो महात्मा स्वामी, निर्लोभी निश्कलञ्चन और तपःगुण प्रधान हैं। आप ऐसा कार्य कदापि नहीं कर सकते।”

महात्मा ने कहा—“मैंने आज तक तो जीवन में ऐसा कार्य कभी किया नहीं। कल आपके यहाँ भोजन करने के पश्चात् मेरी बुद्धि भ्रष्ट हो गयी। प्रतीत होता है, उस घन्ने में ही कोई दोष होगा।”

सेठ ने स्वीकार किया, वह घन्ने चोरी का था। इस प्रकार घन्ने दोष के कारण भी वृत्ति बदल जाती है। गुण विपर्यय हो जाते हैं।

एक महात्मा भजनानंदी सत्त्व प्रधान थे, इन्द्र सैनिक का वेप बदल कर उनके यहाँ एक खड्ग रख गये। न्यास हरण के दोष के कारण वे उसे सदा पास रखते। निरन्तर शस्त्र के संग से उनकी वृत्ति रजोगुणी हो गयी वे हिंसक बन गये।

स्थान का भी प्रभाव बहुत शीघ्र पड़ता है, वहाँ के व्याप्त प्रबल परमाणु प्राणी की वृत्ति को बदल देते हैं। एक बहुत ही सार्विक प्रकृति के गुरुस्थ थे। उन्होंने एह भवन त्रय किया। वे जब उस भवन में जाते तो उनकी बकरा काटने मांस खाने की

कोन सा गुण देहो को किस कार्य में लगाता है ? ४३

इच्छा होती । भवन के बाहर आने पर उन्हें पञ्चाताप होता । पीछे जब उन्होंने पता लगाया, तो पता चला पहिले यहाँ बघ-शाला थी । चकरे काटे जाते थे । उसके परमाणु अब भी वहाँ के वायुमंडल में व्याप्त थे । इसी से उसमें जाते ही उनकी वृत्ति बदल जाती ।

इस प्रकार सत्त्व, रज तथा तम इन तीनों गुणों के प्रवाह निरन्तर पुरुष की वृत्ति को बदलते रहते हैं । जिस गुण का जो कार्य होता है, पुरुष उस गुण के प्रबोध होकर वैसा ही कार्य करने लगता है, वैसी ही उस समय उसके चित्त की वृत्ति बन जाती है ।

सूतजी कहते हैं—“मुनियो ! जब अर्जुन ने तीनों गुणों के विषय में विशेष ज्ञानकारी प्राप्त करने की जिज्ञासा की, तब भगवान् ने कहा—“अर्जुन ! इन तीनों ही गुणों का अपन-अपना स्वभाविक व्यापार है । जैसे कार्य करोगे उनमें उस गुण की अधिकता रहेगी । जैसे भोगों की इच्छा है, उनकी प्राप्ति के लिये पुरुष दुःख सहकर अथक परिश्रम कर रहा है । किसी कारणवश उसके अन्तःकरण में रज और तम की दवाकर सत्त्वगुण की अभिवृद्धि हो गयी, तो उन दुःखद कर्मों से विरक्ति हो जायगी । हृदय में एक स्वभाविक शक्ति का अनुभव होने लगेगा । क्योंकि सत्त्वगुण का स्वभाव देहियो की सुख में संलग्न करने का है ।”

अर्जुन ने पूछा—“जिस प्रकार बड़ा हुआ सत्त्वगुण जीव की सुख में लगाता है, उसी प्रकार बड़ा हुआ रजोगुण किसमें लगाता है ?”

भगवान् ने कहा—“रजोगुण की अभिवृद्धि होने पर भोगों की भोगने की तथा लोभ की इच्छा होती है । भोगों की प्राप्ति

करने के लिये कर्म करने वढ़ते हैं, अतः बड़ा हुआ रजोगुण कर्मों के करने में प्रवृत्त करता है।”

अर्जुन ने पूछा—“सत्त्व तो सुख में और रज कर्मों में लगाता है, बड़ा हुआ तमोगुण प्राणियों को किसमें लगाता है?”

भगवान् ने कहा—“तमोगुण, ज्ञान, प्रकाश तथा कर्मों का द्वेषी है, अतः वह ज्ञान को ढक कर प्राणियों को प्रमाद में प्रवृत्त कराता है। जिसे जानना चाहिये उसे जानने नहीं देता। जो करना चाहिये उसे करने नहीं देता। निद्रा भ्रालस्य और प्रमाद को और प्रेरित करता है।”

अर्जुन ने पूछा—“भगवन् ! गुण तो तीनों ही पुरुष के शरीर में हैं। क्योंकि यह शरीर ही त्रिगुणमय है, फिर इसमें कभी सत्त्व का, कभी रज का और कभी तम का उत्कर्ष कैसे हो जाता है?”

भगवान् ने कहा—“ये तीनों गुण साम्यावस्था में कभी नहीं रहते। साम्यावस्था में होने से तो सृष्टि ही समाप्त हो जायगी। सब गुण मूल प्रकृति में मिल जायेंगे। ये गुण एक दूसरे को दबाकर ही उत्कर्ष को प्राप्त होते हैं। निर्वर्ण को ही दबाकर धनिक बड़े धनिक बनते हैं। सभी कोई गुण बढ़ जाता है, कभी कोई। जब एक गुण बढ़ जाता है, तो दूसरे दो निबेल बन जाते हैं।”

अर्जुन ने कहा—“यही तो मैं पूछता हूँ। जिस गुण को दबा कर कौन-सा गुण प्रबल बन जाता है?”

भगवान् ने कहा—“जैसे सत्त्वगुण उत्कर्ष को प्राप्त करेगा, जब रजोगुण और तमो को दबाकर—उन्हें निबेल बनोकर अपना प्राधान्य स्थापित करेगा। उस समय देहो-पुरुष को चारों ओर प्रसाद दिखायी देने लगेगा, ज्ञान की दृष्टि होने लगेगी और सुखानुभूति होने लगेगी।”

कौन सा गुण देही को जिस कार्य में लगाता है ? ४५

अर्जुन ने पूछा—“तमोगुण का उत्कर्ष कब होगा ?”

भगवान् ने कहा—“इसी प्रकार जब रजोगुण और सत्त्वगुण को दबाकर तमोगुण की अभिवृद्धि होगी, तब पुरुष न कर्मों में प्रवृत्त होगा न जानने की जिज्ञासा होगी । निद्रा, आलस्य और प्रमाद के वशीभूत होकर पड़ा रहेगा ।

अर्जुन ने पूछा—“रजोगुण का उत्कर्ष कब होगा ?”

भगवान् ने कहा—“वही सिद्धांत रजोगुण में भी लगेला ।

जब सत्त्वगुण और तमोगुण दोनों को दबाकर रजोगुण की अभिवृद्धि हो जायगी । तब इसे मार डसें दबा, यह कर, यह कर इस प्रकार कर्मों के करने में अधिकारविक प्रवृत्ति बढ़ेगी ।”

अर्जुन ने पूछा—“हम कैसे जाने कि इस समय कौन से गुण की वृद्धि हो रही है । तीनों गुणों की अभिवृद्धि के कृपा करके लक्षण बता दीजिये ।”

सूतजी कहते हैं—“भूमियो ! अर्जुन के पूछने पर अब भगवान् जैसे तीनों गुणों की वृद्धि के लक्षण बतावेंगे, उस कथा प्रसंग को मैं आगे वर्णन करूँगा ।”

दृश्य

तीनिहु गुन नित रहै किन्तु जब द्वे घटि जाये ।

बढ़ि जायै तब एक गुनी नर सो बहलामें ॥

रज तम गुन दबि जायै सत्त्व गुन तब बढ़ि जायै ।

ऐसेई तब सत्त्व घटे तब रज अधिकायै ॥

आई कम तै सत्त्वगुन, और रजोगुन दबत है ।

तब बढ़ि जायै तमोगुन, त्रिगुन घटत अरु बहत है ॥



गुणों की अभिवृद्धि के लक्षण

[६]

सर्वद्वारेषु देहेऽस्मिन्प्रकाश उपजायते ।
ज्ञानं यदा तदा विद्याद्विवृद्धं सत्त्वमिच्छुत ॥
लोभः प्रवृत्तिरारम्भः कर्मणामशमः स्पृहा ।
रजस्येतानि जायन्ते विवृद्धे भरतपुत्र ॥
अप्रकाशोऽप्रवृत्तिश्च प्रमादो मोह एव च ।
तमस्येतानि जायन्ते विवृद्धे कुरुनन्दन ॥ॐ॥
(श्री भग० गी० १४ अ० ११, १२, १३ श्लोक)

छप्पय

कैसे जाने' कौन बढ़ि रह्यो गुन अब हमरो ।
को का लक्षण तासु मिटाओ संशय संगरो ॥
होवे जब परकाश देह में भीतर बाहर ।
छिटकै मुल पै फाँति लगे सघई जग सुखकर ॥
होहि सुदित अन्तःकरण, ज्ञान विवेक बढ़ै सतत ।
तब जानो अब देह में, सख सुखद पर गुन बढ़त ॥

* जब सरीर के सभी द्वारों में प्रकाश और ज्ञान उत्पन्न हो, तब ऐसा जानो कि मरवगुण बड़ रहा है ॥११॥
है मनुन ! जब लोभ, प्रवृत्ति, कर्मों का प्रारम्भ, मन चांचल्य और

समस्त प्राणी तीनों गुणों के अधीन हैं, तीनों गुणों की प्रेरणा से ही हम समस्त कार्यों को करते हैं। गुणों की प्रेरणा न हो, तो कोई सुष्टि का कार्य ही न हो। सब कुछ रुक जाय। संसारी लोगो के समस्त कार्य त्रिगुण वृत्ति ही द्वारा संचालित होते हैं। सबका अन्वयामी जो शरीर को अधिष्ठान बनाकर घट-घट में बंटा हुआ है, वह जैसे स्वप्न का साक्षी रहता है, वैसे ही गुणों का भी साक्षी रहता है। वह जानता है, इस समय जीव किस गुण के अधीन होकर कार्य कर रहा है, किन्तु जानते हुए भी हम उस समय उसे रोकने में समर्थ नहीं हो सकते। जैसे सोने समय सुपुति अवस्था का साक्षी प्राप्त अनुभव करता है, नै सुख पूर्वक सो रहा है, स्वप्नावस्था का साक्षी तैजस् अनुभव करता है, नै स्वप्न देख रहा है। जागने पर कहते हैं, आज तो बड़ी ही गहरी मोठा नींद आयी, आज तो मैंने विचित्र स्वप्न देखा। किन्तु सोते समय या स्वप्नावस्था में उस समय का साक्षी जीव कुछ कर नहीं सकता। जो साक्षी होता है, वह अभियोग में भाग नहीं ले सकता। इसी प्रकार जब जैसे गुण की वृत्ति हो जाती है उसका साक्षी तो अन्तःकरण स्थित जीवात्मा रहता है और वह अनुभव भी करता है कि इस समय प्रभु गुण बढ़ रहा है, किन्तु उस समय वह वैसी ही वृत्ति के अधीन हो जाता है, पीछे गुण विपर्यय होने पर भूल ही उसके लिये पश्चात्ताप करे।

सत्त्वगुण की वृद्धि की मोटी पहिचान प्रकाश और ज्ञान है। सत्त्वगुण की वृद्धि होने पर विषय वासनाओं से विराग होने

भोगवासना ये सब बड़ी दिखायी दें, तो समझो रजोगुण बढ़ा है ॥१२॥

हे कुसुमन्दन ! जब अप्रकाश, अप्रवृत्ति, प्रमाद और मोह ये सब उत्पन्न हों, तो समझो तमोगुण बढ़ गया है ॥१३॥

४८ श्री भागवत दर्शन भागवती कथा, खण्ड ७६

लगता है, सभी इन्द्रियाँ तथा अन्तःकरण की वृत्तियाँ सादृश भाव में अपना ठीक-ठीक कार्य करने लगती हैं, किसी वस्तु की अनुचित मार्ग से लेने की इच्छा नहीं उत्पन्न होती। -परोपकार करने की भावना उत्पन्न होती है जो वस्तु अपने पास है, उसने दूसरों की सहायता करने का मन होता है। किसी के प्रति क्रोध के भाव नहीं आते। सधमे मधुर भाषण करने का मन होता है, अपने अपकार करने वाले के प्रति भी द्वेष के भाव उत्पन्न नहीं होते। संसार की सभी घटनायें सुखद प्रतीत होती हैं, वित्त में प्रसन्नता अथवा आह्लाद उत्पन्न हो जाता है। ये भावनायें तथा और भी ज्ञानमय प्रकाशमय भावनायें उठने लगें, तब सभी सत्त्वगुण की वृद्धि हो रही है।

रजोगुण में विषयों के प्रति लोभ और कर्म करने की उत्कट अभिलाषा इन दो भावों की प्रचलता रहती है। मेरा भवन सुंदर से सुंदर हो, उसमें सुख की सभी सामग्रियाँ समुपस्थित हों। सुंदर शोभा, सुखद अनुपम आसन, विज्ञ विविध प्रकार के वस्त्र, सुन्दर से सुन्दर आभूषण, ठाट बाट हो। भोजन सुन्दर हो, बहु प्रकार का हो, उससे तड़क-भड़क मनकीन चरपरा विशेष हो, अनेक प्रकार के साग, मांस आदि हों, सर्वत्र आशा पालक मूल्य हों, जिज्जा भी धन प्राप्त होना है, उससे अधिकाधिक धन की अभिलाषा बढ़ती रहे। इसे यशवित्त कहते हैं। यशवित्त की एक कहानी है।

एक राज सेवक था, वह सादृशकी प्रकृति का था। उसे जो भी बेतम मिलता, उससे वह परम सादृशता से जीवन व्यतीत करता। उसमें से लोगों की यथा शक्ति शान भी देता, परोपकार भी करता और धार्मिक कार्यों में भी व्यतीत करता। इस प्रकार

उसका जीवन सात्त्विक ढंग से बड़े आनन्द के साथ व्यतीत हो रहा था।

एक दिन वह घोर वन में चला गया। वहाँ एक यक्ष चिल्ला रहा था, ये ६ सुवर्ण से भरे हुए पात्र हैं, इन्हें जो चाहे सो ले जाय। इसके मन में लोभ हुआ कि इन्हें ले चलो किमी मच्छे काम में लग जायेंगे। “इन भावना से वह छः सुवर्ण पात्रों को यक्ष से ले आया। घर में आकर उसने वे छः पात्र रख दिये। ५ पात्र तो भरे हुए थे। एक आया था। अब उनके मन में यह बात आई, कि यह पात्र भी किसी प्रकार भर जाय, तो हमारे पास ६ भरे हुए सुवर्ण पात्र हो जायें।”

साथ से लोभ बढ़ता ही है। उसकी स्त्री ने भी उसकी बात का अनुमोदन किया। अब दोनों ने मिलकर सोचा—“यह घड़ा कैसे भरे।” स्त्री ने कहा—“भोजन में कम से कम व्यय किया करेंगे। और आप जो लोगों की सहायता कर देते हैं, बहुत साधन देवता, वितर, ऋषि, प्रतिष्ठा, भाई बन्धु कुटुम्बियों के नाम से जो व्यय कर देते हैं, उसे बन्द करके उससे बचे धन को भी इसी में सरते चलो। थोड़े दिनों में यह पात्र भर जायगा।”

अब तो ऐसा ही किया जाने लगा। पहिले जो रोटी, दाल, साग, फल फूल, दूध, दही सहित सुंदर भोजन बनता था। वह बन्द हुआ। सूखी रोटी, नमक से या सूखी दाल से खाने लगे। पूजा पाठ, आदि, तर्पण, दान धर्म सब बन्द। जो कुछ बचे उसे ‘घर गुल्लक में’ किन्तु वह गुल्लक ऐसी थी, कि भरती ही नहीं थी। कितना भी उसमें डालते चलो उसकी पूर्ति ही नहीं होती थी। जब वह रिक्त पात्र बहुत प्रयत्न करने पर भी न भरा तो उसने राजा से प्रार्थना की—मेरा वेतन बढ़ा दिया जाय। राजा उसके सात्त्विक भाव से दान, धर्म, पूजा पाठ से प्रभावित थे। उसका वेतन

दुगुना कर दिया। फिर भी वह पात्र खाली ही रहा, भरा ही नहीं। तब उसने राजा में पुनः वेतन बढ़ाने की प्रार्थना की। राजा को अब संदेह हुआ। उसने पूछा—“तुम्हारा वेतन दुगुना तो कर दिया, अब तुम वेतन बढ़वा कर क्या करोगे, ऐसी कौन-सी आवश्यकता आ गयी?”

तब उसने कहा—“महाराज, मेरा एक सुरक्षा पात्र है उसे भरना है। मैंने सब कठौती करके उसे भरना चाहा परन्तु वह भरता ही नहीं। न जाने उसमें कितना वित्त समावेगा।”

राजा ने कहा—“वह एक पात्र नहीं ६ पात्र थे।”

सेवक ने कहा—“शसदाता! आप सत्य कह रहे हैं ६ पात्र ही हैं। ५ तो भरे हुए हैं। एक खाली है उसे भरने की हमने खाना पाना, पूजा पाठ धर्म में व्यय होने वाला सब धन बन्द कर दिया फिर भी वह भरता नहीं। इसी को भरने के लिये मैं आप से बार-बार वेतन वृद्धि की प्रार्थना करता हूँ।”

राजा ने कहा—“वे ६ घड़े तुम्हें वन में मिलें होंगे। यह यक्ष का वित्त है। जब मैं वन में गया था, तब उस यक्ष ने मुझसे भी इस धन की लेने को कहा था, किन्तु यक्ष का धन समझकर मैंने उसे नहीं लिया। अब तुम उसे तुरन्त जाकर लौटा आओ। नहीं तुम्हारी दुर्गति होगी। पांच इन्द्रियों के स्वामी इस छोटे सन रूपी पात्र में चाहें जितना धन डालते जाओ चाहें सम्पूर्ण संसार की विषयभोग की सामग्रियों को डाल दो। यह भरने का जूही। तुम इस यक्ष वित्त को तुरन्त जाकर लौटा आओ। इसी में कल्याण है।”

—राजा की आज्ञा मानकर वह सेवक तुरन्त छेऊँ। सुरक्षा पात्रों को वन में जाकर यक्ष को लौटा आया। फिर उसका भोजन सुन्दर बनने लगा। देवता, ऋषि, पितर तथा अतिथियों का सरकार

होने लगा। धर्म कर्म में व्यय होने लगा। यह यथा वित्त क्या है ? लोभ ही है। इसीलिये भागवतकार ने कहा है—

देवपितृभूतानि ज्ञातौन् दम्भश्च भामिनः।

धर्मविभज्य चरुमान यक्षचित्तः पतस्यधः॥

जो देवता, पितर, ऋषि, अन्य प्राणियों, जाति भाई कुटुम्बियों तथा और भी अतिथि आदि मागीदारों को बिना लिलासे बनका भाग बिना निकाले—जो अकेला खा जाता है, उस यक्षचित्त वाले पुरुष का अधः पात होता है, उसकी अधोगति हो जाती है। लोभ तथा लुब्धा ऐसा पाप है, कि यह कभी भरता ही नहीं।

तमोगुण में काम करने की इच्छा और आलस्य में पड़े रहना इसकी प्रवृत्ति रहती है।

दो आलसी एक आम के बगीचे में तो रहे थे। उबर से एक घुड़सवार निकला। उनमें से एक आलसी ने उसे पुकारा। घोड़ा वाला समीप आ गया, तो उसने बोला—‘आप घोड़े से नाचे उतर कर मेरी एक बात सुन लीजिये।’

‘घोड़ा वाला भला मानुष था, उतर पड़ा और पूछा—‘कहो क्या बात है।’

उस आलसी ने कहा—‘वह जो पास में पका आम पड़ा है, उसे मेरे मुख में निचोड़ दीजिये।’

हँसकर घोड़े वाले ने कहा—‘भरे, भाई ! तुम तो वड़े आलसी हो, तुमसे पास में पड़ा आम उठाकर चूसा भी नहीं जाता।’

यह सुनकर दूसरा आलसी बोल उठा—‘भरो, पूछा मत महाराज ! यह वड़ा ही आलसी है। कल एक पका आम मेरे मुख में गिर गया। उसका रस मे चूत गया। मेरे सध मुख पर

रस लग गया। रात्रि भर मेरे मुख को कुत्ता चाटता रहा। मैं इससे बार-बार कहना—“तनिक कुत्ते को भगा दो, सो महा-राज ! यड़ उठा हो नहीं। कुत्ता चाटता ही रहा।”

उप धुइसवार ने हँसकर कहा—“तुम तो इसके भी गुस्से निकले।”

अकर्मण्यता और आनस्य में पड़े रहना यही तमोगुण का लक्षण है। यही तीनों गुणों की विशेषता है। भगवान् ने इसी का वर्णन अर्जुन से किया है।

सूतजी कहते हैं—“मुनियो ! जब अर्जुन ने तीनों गुणों के ‘पुषक्-पुषक्’ लक्षण पूछे, तो भगवान् ने कहा—“जब जो गुण बढ़ जाता है तो उसी के लक्षण प्रकट होने लगते हैं।”

अर्जुन ने कहा—“अच्छा, जब सत्त्वगुण की वृद्धि होती है, सब कोन-कोन से लक्षण प्रकट होते हैं ?”

भगवान् ने कहा—“अर्जुन ! यह शरीर भोग भवन है। जीवात्मा इसी में भोगों को भोगा करता है। जिस समय सभी इन्द्रियों में—जो विषय भोगों की उपलब्धि के साधन हैं उनमें—प्रकाश उत्पन्न हो जाय। अर्थात् विषय भोगों की अनित्यता प्रकट होने लगे। यह अनुभव होने लगे कि ये विषय भाग क्षणभंगुर हैं। ज्ञानवान् है अनेक है। ऐसे ज्ञान होने पर मन में प्रसन्नता हो, सरल, सादा, धार्मिक जीवन बिताने की इच्छा उठे। तभी जानना चाहिये कि अब सत्त्वगुण की वृद्धि हुई है।”

अर्जुन ने पूछा—“अच्छा, रजोगुण की वृद्धि में कोन-कोन से लक्षण प्रकट होते हैं ?”

भगवान् ने कहा—“रजोगुण की वृद्धि में सबसे पहले तो लोभ उत्पन्न होता है।”

अर्जुन ने पूछा—“लोभ क्या ?”

भगवान् ने कहा—“अधिकाधिक भोगों की-कभी भी वृत्ति न होने की-इच्छा को लोभ कहते हैं। जितना प्राप्त हो जाय, उससे अधिक की और इच्छा उत्पन्न हो जाय उसी का नाम लोभ है। फिर कर्म करने में प्रवृत्ति होती है।”

अर्जुन ने पूछा—“प्रवृत्ति किसे कहते हैं?”

भगवान् ने कहा—“सतत प्रयत्न करते रहने की इच्छा का ही नाम प्रवृत्ति है। इस काम को ऐसे करने पर यह फल मिल जायगा। यों करने पर इसमें अधिक लाभ हो जायगा। ऐसी उहापोह निरन्तर मन में उठती रहें यही प्रवृत्ति है। प्रवृत्ति के साथ ही साथ उन-उन कर्मों को आरम्भ भी कर दे।”

अर्जुन ने पूछा—“कर्मों के आरम्भ का अर्थ क्या?”

भगवान् ने कहा—“जैसे सुंदर भवन बनाने की प्रवृत्ति हुई, तो तुरंत ईंट, पत्थर, चूना आदि जुटाना। जैसे हो तैसे उचित अनुचित उपायों से भावना बन जाय, वैसे ही कार्यों को आरम्भ कर देना यही कर्मारम्भ कहा जाता है। कार्यारम्भ के साथ ही अशम बढ़ जाय।”

अर्जुन ने पूछा—“अशम किसे कहते हैं?”

भगवान् ने कहा—“अशम कहते हैं इच्छाओं को शमन-दमन-न करने की जैसे भवन बनाने की कार्यारम्भ कर दिया। अभी भवन बना भी नहीं है फिर भी सोचने लगते हैं, भवन बनते ही एक सुंदर सालाब और बनवाऊंगा, उसमें कमल लगवाऊंगा, उसके सामने एक बगीचा लगवाऊंगा। इस प्रकार एक के पश्चात् दूसरा दूसरे के पश्चात् तीसरा ऐसे संकटन करते ही जाना। संकटों का प्रवाह रुके नहीं अविच्छिन्न रूप से चलता ही रहे इसी का नाम अशम है। अशम के पश्चात् स्थिर होती है।”

अर्जुन ने पूछा—“स्थिर का क्या लक्षण है?”

भगवान् ने कहा—“वलवती कामना का ही नाम स्पृहा है, जैसे हमने भवन बनाया, उसके सामने एक वाटिका बनाने की इच्छा है, उसमें किसी का घर बाधक है। उस घर की साम, दान, ढंढ भेद किसी भी प्रकार से मृगिया लेने का ही नाम स्पृहा है। किसी पर कोई अच्छी वस्तु देखी, किसी पर थोड़ा या बहुत धन देखा, उसे धन केव प्रकरण अपना बना लेते की कामना को स्पृहा कहते हैं। लोभ, प्रवृत्ति, कर्मों का आरंभ, अशम और स्पृहा रजोगुण की वृद्धि हो जाने पर ये सब लक्षण प्रकट हो जाते हैं। ये जब बढ़ने लगे तब समझा रजोगुण बढ़ गया है।”

अर्जुन ने पूछा—“तमोगुण की वृद्धि के कौन-कौन से लक्षण हैं?”

भगवान् ने कहा—“कोई कितना भी उपदेश करे वह मन में बैठे ही नहीं। शतःकरण में अस्वकार का ही सा आश्रय बना रहे, काम करने में प्रवृत्ति ही न हो, कोई काम करने को वहे भी तो भांग बहाने बनाकर टालम टाल कर जाय, प्रमाद में पड़ा रहे। मोहग्रस्त बना रहे कोई काम लाभ का है, उसमें अपनी हानि अनुभव करे यही मोह है, मोहग्रस्त होकर तान दुपट्टा मोता रहे। अपने हित का ध्यान न रखे ये ही सब लक्षण तमोगुण की वृद्धि के हैं।”

अर्जुन ने पूछा—“भगवन् ! ये तीनों गुण तो सदा प्राणियों के शरीरों में रहते ही हैं। कोई बिरले ही त्रिगुणातीत होते हैं। वे तो मृत्यु की जीत लेते हैं, धमर बन जाते हैं किन्तु जो त्रिगुणातीत नहीं हुए हैं। तीनों गुणों के प्रवाह में ही वह रहते हैं, मरते समय यदि उसका स्वरूप बड़ा हुआ है, तो उनकी कौन सी गति होगी? यदि मरते समय रजोगुण या तमोगुण की वृद्धि

है, तो उनकी कौन-सी गति होगी। कृपया मरणा समक्ष में बड़े गुणों का फल बता दीजिये।”

सुतजी कहते हैं—“मुनियो! अर्जुन के इस प्रश्न का भगवान् जो उत्तर दगे, उसका वर्णन मैं आगे करूँगा।

छप्पय

ऐसे ही जब बड़े रजोगुण अपने तन में।
जति ई होहि अशान्ति मचै गड़बड़ जति मनमें ॥
होहि चित्त में लोभ विषय सुख सब मिलि जाये।
अरजुन ! होइ प्रवृत्ति जतन करि द्रव्य कमाये ॥
कर्म कामना सहित सब, स्वार्थ भाव आरम्भ जब।
विषय वासना प्रबल हों, बड़यो रजोगुन जानि तब ॥

बड़े तमोगुन तबहिं जबहिं तम मनमें आवे।
अन्तःकरण मलीन प्रकाश न करन दिखायै ॥
जो अपने करतव्य प्रवृत्ति नहिं करमनि होयै।
आलस में ई परयो रहे या नितिदिन सोयै ॥
होहि मलिनता मोहवश, आलस और प्रमाद जति।
बड़यो तमोगुन समुच्च तब, होइ न कृतनन्दगसुमति ॥



अन्तकाल में बड़े हुए भिन्न-भिन्न गुणों का भिन्न-भिन्न फल

[७]

सदा सत्त्वे प्रवृद्धे तु प्रलयं याति देहभुज ।
तदोत्तमविदां लोकानमलान्प्रतिपद्यते ॥
रजसि प्रलयं गत्वा कर्मसङ्घिषु जायते ।
तथा प्रलीनस्तमसि मूढयोनिषु जायते ॥३॥
(श्री० भग० गी० १४ अ० १४, १५ श्लोक)

छप्पथ

तीनिहु गुन के माहिँ बढै गुन जो भवन्द अति ।
मृत्यु समय जो प्रयल होहि गुन सो अन्तिम गति ॥
बुद्धि सत्त्व गुन होहि संरे जबई जिह प्राणी ।
होयै सद्गति तासु नहीं दुरगति भिद् जानी ॥
शुभ करमनि करता विमल, जिनि लोकनि में जात है ।
दिव्य स्वरग आदिक परम, लोकनि पाइ सिहात है ॥

॥ जब जो बास्मा रुक्म की बुद्धि में मृत्यु को प्राप्त होता है, तब वह उन निर्मल लोकों को प्राप्त होता है, जिनमें उत्तम कर्म करने वाले पुरुष जाते हैं ॥१४॥

धीर यदि रजोगुण की बुद्धि के समय मरे तो कर्मावशक्त पुरुषों में पैदा होता है धीर तमोगुण की बुद्धि में मृत्यु को प्राप्त हो, तो मूढ़ योनिमें से उत्पन्न होता है ॥१५॥

अस्तकाल में बड़े हुए भिन्न-भिन्न गुणों का भिन्न-भिन्न फल १७

समस्त त्रिलोकी के जीव अपने-अपने गुणों के अनुसार कर्म करके ऊँची, नीची और मध्यम योनियों को प्राप्त करते हैं। भुवर्लोक के ऊपर अनेक लोक हैं। प्राणी जब तक गुणों के अधीन रहकर कर्म करता रहेगा, तब तक त्रिलोकी में ही भटकता रहेगा। जन्मता रहेगा, मरता रहेगा। ब्रह्मलोक पर्यन्त सभी लोक क्षयिष्णु पुनरावर्ती हैं। सत्त्वगुण प्रधान व्यक्ति तपस्या, दान, धर्म, व्रत, उपवास, तीर्थयात्रा, ब्रह्मचर्य पालन, इन्द्रिय दमन, मन की स्थिरता, सत्य, शौच, धास्तिकता, सन्तोष, स्वाध्याय, प्राणायामादि शुभ कर्मों में सदा लगे रहते हैं। भूल से उन से यदि कोई रजोगुणों, तमोगुणों अथवा पाप कर्म कभी बन जाता है, तो कुछ चाण्डाल्यादि व्रत करके उसका प्रायश्चित्त करते हैं। ऐसे पुरुषों का मरते समय सत्त्वगुण ही बढ़ता है, अतः ऐसे पुण्य कर्म कर्ता सदा पुण्य लोकों में हो जाते हैं।

सात्त्विक शुभ कर्म करने वाले व्यक्तिके पुण्यों के लोक बनते रहते हैं। सत्त्वप्रधान पुण्यात्मा लोग उन्हीं लोकों में जाकर सुखों का उपभोग करते हैं। क्योंकि सत्त्वगुण का परिणाम सुख ही है।

श्री रामजी ने शिव धनुष को भंग करके सीता जी को प्राप्त किया। विवाह करके जब वे अयोध्या को जाने लगे, तभी मार्ग में परशुराम जी मिले वे शिव धनुष भंग के कारण धत्यन्त ही क्रुपित हो रहे थे, श्री रामचन्द्र जी ने बड़ी देर तक वाद-विवाद होता रहा। अन्त में परशुराम जी ने कहा — “शिवजी के धनुष के ही संशय मेरे पास एक बंशख धनुष और है, यदि तुम उसे चढ़ा दोगे तो मैं तुम्हारा लोहा मान जाऊँगा।” यह कहकर परशुराम ने उन्हें वह धनुष दिया, श्री रामचन्द्रजी ने सहज भाव से उस धनुष पर बाण चढ़ा दिया। परशुराम जी नतमस्तक

हुए श्रीराम का उन्होंने भगवत् बुद्धि में अभिव्यक्त किया। तब रामचन्द्र जी ने कहा—“ब्रह्मन् ! मेरा धनुष पर बारा चढ़ावा कभी व्यर्थ नहीं जाता। राम का वारण निरर्थक नहीं जाता। आप ब्राह्मण हैं, अतः मैं आपका वध तो करूँगा नहीं। अब यह बताइये कि इस वारण द्वारा मैं आपको चलने की शक्ति को नष्ट कर दूँ। अथवा आपके पुण्यपाजित लोकों को नष्ट कर दूँ।

परशुराम जी ने कहा—‘राघव ! मैंने समस्त पृथ्वी को अपने पुरुषार्थ में जीतकर अन्त में इसे कश्यप जी को दान कर दिया था। दान करते समय मैंने प्रसिद्धा की थी, कि मैं तुम्हारी पृथ्वी पर रात्रि में नहीं रहूँगा। अतः मुझे महेन्द्र पर्वत पर जाना है, इसलिये आप मेरी गति को तो अवरोध करें नहीं। इस वारण से मेरे पुण्यपाजित लोकों को ही नष्ट कर दो।’ भगवान् ने ऐसा ही किया। इस प्रकार पुण्य कर्म करने वाले सत्त्व प्रधान पुरुष मर कर स्वोपाजित पुण्यलोकों को ही प्राप्त करते हैं।

जो राजस् प्रकृति के पुरुष हैं, वे सदा कर्मों में ही आसक्त बने रहते हैं, अतः अपने सुकृतों को स्वर्गादि लोकों में भोग कर अन्त में इसी कर्म भूमि में जन्म लेकर पुनः वहाँ में ही निमग्न हो जाते हैं। कर्म चाहें शुभ हो या अशुभ वे सब रजोगुण द्वारा ही होते हैं और उनका फल भी रजोगुण प्रधान होता है। हौ मम-वत् सेवा बुद्धि-निष्काम भाव से-फल की आशा न रखकर जो कर्म किये जाते हैं, वे भले ही रजोगुण को ही प्ररणा से किये गये हों, उनका फल रजोगुण प्रधान नहीं होता। भगवान् तो निर्गुण हैं, अतः उनके निमित्त किये हुए कर्म भी निर्गुण ही होते हैं, वे जन्म मृत्यु के चक्कर में डालेन वाले न होकर मदा के लिये उनसे छुटकारा दिलाये जाते हैं।

अन्तकाल में बड़े हुए भिन्न-भिन्न गुणों का भिन्न-भिन्न फल रहे

इसी प्रकार तमोगुणों कर्म करने वाले लोग मरकर मिलोकी के अन्तर्गत दक्षिण दिशा में पृथ्वी के नीचे और जल के ऊपर घोर अन्धकारमय नरकादि असुर्या नाम के जो लोक है उन लोकों में वे जाते हैं, वहाँ नाना यातनायें भोगकर अन्त में शूकर कृकड़ादि पशु योनियों में या मूढ़ योनियों में उत्पन्न होते हैं।

सत्त्वगुण प्रधान कर्मों का फल सुख है, तमोगुणों कर्मों का फल दुःख है और रजोगुण प्रधान कर्मों का फल मिला जुला होता है। यह बात सदा स्मरण रखने की है कि ऐसा कोई पुरुष न होगा, जिससे सदा पाप ही पाप कर्म होते रहे हों, या पुण्य ही पुण्य कर्म होते रहे हों। ज्ञान में अनजान में सभी से कुछ न कुछ पाप कर्म या पुण्य कर्म बन जाते हैं। क्योंकि सृष्टि त्रिगुणात्मक है। जीव तीन गुणों के अधीन है। जितना जिसका पुण्य होता है, यदि वह स्वर्ग जाने योग्य हुआ तो स्वर्ग में जाकर भोगता है, सामान्य पुण्य हुआ तो उसका यहाँ पृथ्वी पर सामान्य योनियों में ही कर लेगा। जैसे कुत्ता पाप योनियों में है, किन्तु कोई-कोई बड़े-बड़े आदमियों के कुत्ते ऐसे सुखों को भोगते हैं, जिनकी प्राप्ति सामान्य लोगों को दुर्लभ है। यह उनके पुण्यों का ही फल है।

सामान्य नियम यह है कि उत्तम कर्म करने वाले सत्त्व प्रकृति के पुरुष सुख कर्मों के कारण मरकर उत्तम लोकों में जाते हैं, जहाँ तक उनके पुण्यों का क्षय नहीं होता। तब तक वे वहाँ के सुखों को भोगते रहते हैं। पुरुषों का क्षय होने पर वे पुनः पृथ्वी पर कुछ पुण्य शेष रह जाने के कारण उत्तम कुल में उत्पन्न हो जाते हैं।

जो पाप कर्म करने वाले तमोगुणों हैं, वे मरकर नरकादि लोकों में जाकर वहाँ की यातनायों को भोगते हैं। कुछ पाप शेष होने पर वे नरकादि से निकलकर यहाँ शूकर कृकड़ा

अप्य मूढ योनियों में जन्म लेते हैं।

जो रजोगुणी कर्म करने वाले मिले जुले गुणों वाले होते हैं, वे नरक स्वर्ग न जाकर तत्काल फिर यहीं दूसरी योनियों में कभी-उत्पन्न हो जाते हैं। कभी कुछ लोगों की आत्मा आकाश में विचरण करती रहती है, वह बिना गर्भवास किये ही दूसरे मृत शरीरों में प्रविष्ट हो जाती है। मरते समय जिसकी जैसी गति होती है, जिस गुण का प्राबल्य होता है, उसकी वैसे ही गति होती है उसी गुण के समान उसे लोकों की योनियों की प्राप्ति होती है।

सूतजी कहते हैं—“मुनियो ! जब अर्जुन ने मरण के समय बड़े हुए गुणों के फल के सम्बन्ध में प्रश्न किया तब भगवान् ने कहा—“अर्जुन जीवन भर मनुष्य जैसे कर्मों का निरन्तर अभ्यास करता रहेगा। जिन गुणों में लिप्त रहेगा, प्रायः मरते समय वे ही गुण उसके बुद्धि को प्राप्त हो जायेंगे और उन्हीं गुणों के अनुसार उसकी गति होगी।”

अर्जुन ने पूछा—“मान लो, मरते समय किसी के शरीर में सत्त्वगुण की बुद्धि हुई है। तो उसे किन लोकों की प्राप्ति होगी ?”

भगवान् ने कहा—“मरते समय सत्त्वगुण की अभिवृद्धि उन्हीं लोगों के शरीर में होगी, जिन्होंने जीवन भर शास्त्र-विहित सात्त्विक कर्म किये हैं। ऐसे लोगों को दिव्य प्रकाशमय उत्तम निर्मल स्वर्गीय लोकों की प्राप्ति होगी। वे लोग मल-मयों के बोधों से रहित होंगे। जिनमें दुःख का नाम भी न होगा, सुख ही सुख चारों ओर प्रतीत होगा।”

अर्जुन ने कहा—“अच्छा, मरते समय जिसका रजोगुण बढ़-जाय, उसकी क्या गति होगी ? उसका जन्म किन लोगों के धर्म में होगा ?”

अन्तकाल में बड़े हुए भिन्न-भिन्न गुणों का भिन्न-भिन्न फल ६१

भगवान् ने कहा—“जो कर्मात्मक पुरुष हैं, जो लोभ के बशो-भूत होकर फल की इच्छा से सदा सर्वदा कर्मों में ही जुटे रहते हैं, जो निष्काम होने की बात सोचते भी नहीं। ऐसे पुरुषों का मृत्यु के अनन्तर उन्होंने कर्मात्मक मनुष्यों के मध्य में जन्म होता है, जो सदा सर्वदा कर्मों में ही प्रवृत्त रहते हैं। अर्थात् उनका जन्म मनुष्य योनि में होता है, जो प्रायः राजस्व प्रकृति के होने के कारण सदा सर्वदा फल की इच्छा से कर्मों को ही करते रहते हैं।”

अर्जुन ने पूछा—“मरते समय जिनके दारीर में तमोगुण की ही अभिवृद्धि हो जाती है, उनकी कौन सी गति होती है?”

भगवान् ने कहा—“जो कामचोर हैं, सदा कर्म करने से जो चुराते रहते हैं जो निद्रा, भ्रालस्य और प्रमाद प्रिय हैं ऐसे ही लोगों की मरणकाल में तमोगुण की अभिवृद्धि होती है। वे सरकर मूढ़ योनियों में उत्पन्न होते हैं झुकर सुकरादि पशु योनियों में पैदा होते हैं जिनका एकमात्र लक्ष्य आहार, निद्रा, भय और मैथुनादि ही है। वे भले ही मनुष्य योनि में भी उत्पन्न हो जायें, किन्तु जिन मनुष्यों का लक्ष्य केवल खा-पीकर सो जाना मैथुनादि कर्मों में ही समय बिताना हो, तो वे भी एक प्रकार के मूढ़ योनि वाले पशु ही हैं। पशु शब्द का अर्थ जोष है। संसार में ऐसे घसंख्यों बद्ध प्राणी हैं जिनके जीवन का एकमात्र लक्ष्य आहार निद्रा भय और मैथुनादि सुख ही हैं। वे तमोगुणी पुरुष बार-बार संसार में जन्मते और मरते रहते हैं। वे ही अन्त-काल में तीनों गुणों की वृद्धि में होने वाली गतियाँ हैं।”

अर्जुन ने कहा—“भगवन् इन तीनों गुणों के सम्बन्ध में मुझे और कुछ विस्तार से बतावे। इस प्रकार फल भेद होने का

१२ श्री भागवत दर्शन भागवती कथा, खण्ड ७६

कारण क्या है, इन गुणों के कारण ऊँची नीची गतियाँ कैसे प्राप्त होती हैं ?”

सूत्रजी कहते हैं—“मुनियो ! अबुन के वृद्धने पर भगवान् इन गुणों के सम्बन्ध में खोर जो विशेष स्पष्टीकरण करेगा उसका वर्णन मैं ध्याये कहूँगा ।”

छप्पय

बुद्धि रजोगुण होहि मूल्य पुनि होवे कवई ।
करमनि चौ आसकि रहे मन में अति तवई ॥
करम संगि जो मयुज योनि ताई में आवै ।
पुनि-पुनि करिके करम अन्त में फिरि मरि जावै ॥
बुद्धि तमोगुन में मरै, भूढ़-योनि पावे तुरत ।
जइ पसु पक्षी कीट वनि, अन्धकार में बसहि नित ॥



त्रिगुणों का फल तथा उनकी गतियाँ

[८]

कर्मणः सुकृतस्याहुः सात्त्विकं मिर्मलं फलम् ।
 रजस्तु फलं दुःखमज्ञानं तमसः फलम् ॥
 सत्त्वात्संजायते ज्ञानं रजसो लोभ एव च ।
 प्रमादमोहो तमसो भवतोऽज्ञानमेव च ॥
 ऊर्ध्वं गच्छन्ति सत्त्वस्था मध्ये तिष्ठन्ति राजसः ।
 जवन्यगुणवृत्तिस्था अधो गच्छन्ति तमसाः ॥६॥
 (श्री० भग० गी० १४ श्लो० १६, १७, १८, श्लो०)

छप्पय

जा गुण भन आसक करम तस भाष सैजोवै ।
 गुन वैसीहै होहि तासु फल तैसी होवै ॥
 सात्त्विक गुन कति भेच्छ करी करि गुन उपकावै ।
 ज्ञान और वैराग्य करम फल निरमल पावै ॥
 दुःख रजोगुन करम को, फल दुःखहि वेदनि कह्यो ।
 तमको फल अज्ञान है, यो फल गुन तीननि कह्यो ॥

छ सात्त्विक कर्मों का सात्त्विक निमल फल होता है, रजोगुण का फल दुःख है और तमोगुण का फल है-अज्ञान ॥१६॥
 सत्त्वगुण से ज्ञान उत्पन्न होता है, रजोगुण से लोभ और तमोगुण से प्रमाद, मोह और अज्ञान ये सब उत्पन्न होते हैं ॥१७॥

कारण के अनुरूप कार्य होता है। कारण मृत्तिका है। उसके कार्य हैं घट, करवा, सकोरा, नाद आदि। इस प्रकार जैसा गुण होगा उसी के अनुरूप उसका कार्य होगा—फल निकर्षण। सात्त्विक गुण के जितने भी कार्य होंगे, वे सब सात्त्विकी कार्य ही होंगे। सात्त्विकी कार्यों का फल भी उस गुण के अनुरूप ही होगा। सात्त्विक गुण अष्ट है, उत्तम है, निर्मल है, प्रकाश युक्त है, ज्येष्ठ है तो उसके कार्य भी सुखद होंगे। चीनी के जितने खिलौने हैं, चाहे वह सोम्य गी के आकर का हो, अथवा सुकर, झूकर, 'बूहा', सर्प किसी के आकार का किसी के नाम वासा वयों न हो, जिह्वा पर रखने पर सभी का स्वाद एक सा मीठा सुखद होगा। क्योंकि उनका कारण भी तो चीनी है।

इसी प्रकार रजोगुण मध्यमगुण है, वह कर्म प्रधान है, लोभ उसकी प्रकृति है अतः उसका हेतु है उससे जो भी कर्म होंगे वे सब वित्त को चंचल बनाने वाले, अगाति को बढ़ाने वाले, संसारी स्वार्थ को साधने वाले तथा परिणाम में दुःख देने वाले होंगे। जैसे सुवर्ण के बने आभूषण कैसे भी हों, उन्हें देखकर चोरों का, खालचियों का, ठगों का मन विचलित हो ही जायगा। वे चाहें जीमाता के आकार के बने हों, कर्णपुष्प के आकार के या मछली के आकार के कुंडल हों। उन सबमें निहित सुवर्ण पर ही लालचा की दृष्टि जायगी। कारण ही उसे दिखायी देगा, कार्य का उसकी दृष्टि में विशेष महत्त्व नहीं।

इसी प्रकार तमोगुण के सभी कार्य तमोगुणों ही होंगे।

सत्त्वगुण में स्थित पुरुष ऊर्ध्व लोको में जाते हैं तथा रजोगुणी मध्य में रहते हैं। अथर्वगुण श्रुति वाले तामसी लोग धर्मोपनिषद् को प्राप्ति होते हैं ॥१८॥

उनका फल भी भ्रमता, भूलता तथा भ्रष्टकार ही होगा। तमो-गुणों मुख्य जहाँ तक होगा कामों से बचना ही चाहेगा, यदि कार्य करेगा भी तो घोर तमोगुणों कार्यों को ही करेगा। जैसे हिंसा, व्यभिचार, असाध्य पदार्थों का खाना, अपेय पदार्थों का पान, अगम्या गमन, धर्म कर्म में प्रमाद, कर्तव्य कर्मों के प्रति उदासीनता, अथवा तथा आलस्य। दिन में रात्रि में सोते ही रहना। ये ही तमोगुणों काम उसके द्वारा होंगे। क्योंकि तमो-गुण सबसे निकृष्ट अधम गुण है। योनियों में उत्तम योनि देव-योनि है, मध्यम योनि मानव योनि है, पशु-पक्षी सरीसृपादि की अधम योनियाँ हैं। उत्तम योनियों में उत्तमगुण सत्त्व गुण वाले प्राणी जाते हैं। ब्रह्मलोक पर्यन्त ऊँचे लोकों को वे अपने पुण्यकर्मों के प्रभाव से जीत लेते हैं।

मिले-जुले गुणों वाला मध्यमगुण रजोगुण है। अतः उन्हें मध्य लोक इस पृथ्वी लोक की प्राप्ति होती है। कर्मप्रधान मनुष्य योनि मिलती है। यह मध्य का मार्ग है पृथ्वी पर से ही मनुष्य साधन करके उत्तम लोकों को भी प्राप्त कर सकता है, अधम कर्म करके न-वे भी जा सकता है, उसका अधःपात भी हो सकता है। रजोगुण के द्वारा मध्य का मध्य में भी रह सकता है और गुणातीत होकर ससार सागर से विमुक्त भी बन सकता है। मनुष्य योनि मध्य मार्ग है बोरया है। यहाँ से देव भी बन सकता है दैत्य भी बन सकता है, बीच में भी लटका रह सकता है और अवर्गों को भी प्राप्त कर सकता है।

इस प्रकार यह तीनों गुणों का खेल हो रहा है ये ही तीन गुण प्राणिमों को तबा रहे हैं, घुमा रहे हैं और जन्म तथा मृत्यु के चक्कर में भुला रहे हैं।

सूतजी कहते हैं—'मुनियो! तीनों गुणों के कारण ऊँची-

नीची गतियाँ कैसे प्राप्त होती हैं, जब अर्जुन ने यह प्रश्न किया, तब भगवान् ने कहा—“अर्जुन ! मुनियों ने इन गुणों का विषय रूप में विवेचन किया है। उत्तम, मध्यम और अधम योनियों में किस-किस गुण के प्रभाव से कैसे-कैसे जाया जाता है, इसकी विरोपरूप से व्याख्या की है। सत्त्वगुण प्रधान, मुख्य तथा उत्तमगुण है। रजोगुण मध्यम, बीच का तथा सामान्य गुण है। तमोगुण, निकृष्ट, अधम तथा सबने अन्धकारमय गुण है। इनके अनुरूप ही फल होता है।”

अर्जुन ने पूछा—“सबसे श्रेष्ठ और सत्त्वगुण है उस कर्म का फल क्या है?” भगवान् ने कहा—“सार्विक प्रकृति सुकृति पुरुषों की होती है। जो धर्मात्मा पुरुष होते हैं वे ही सत्त्व प्रधान होते हैं। महर्षियों का कथन है कि सत्त्वगुण का फल मूल से रहित निर्मल होता है, उसका परिणाम सुख देने वाला हुआ करता है।”

अर्जुन ने पूछा—“रजोगुण जो मध्यम गुण है उसका कर्म फल क्या है?”

भगवान् ने कहा—“रजोगुण का फल दुःख है। रजोगुण से जो सुख होता है वह भी दुःख मिश्रित हो सुख होता है।”

अर्जुन ने पूछा—“तमोगुण जो सबसे निकृष्ट गुण है उसका फल क्या है?”

भगवान् ने कहा—“तामस प्रकृति अधम के कारण होती है, उसका फल अज्ञान अर्थात् अविवेक ही है। तामसी गुण वालों को यह विवेक नहीं रहता कि कौन-सा कर्म कर्तव्य है कौन-सा अकर्तव्य। वे परमार्थ से अंधित रहते हैं।”

अर्जुन ने पूछा—“सिंहा होता क्यों है? इसमें हेतु क्या है?” भगवान् ने कहा—“सत्त्वगुण, प्रकाश प्रधान है, अतः इसके

कार्य भी प्रकाशमय ज्ञानमय होते हैं, प्रकाश का परिणाम तो सुख होना ही चाहिये। रजोगुण भोगेच्छाओं पर निर्भर है। भोगेच्छा में कभी पूर्ण नहीं होती जितने भोग मिलते जाते हैं उतनी ही इच्छाय बढ़ती जाती है। भोगेच्छाओं की पूर्ति असंभव है। इसी का नाम लोभ है। लोभ में दुःख होगा ही। इसी प्रकार तमोगुण अज्ञानमय है। उसमें प्रसाद मोह होता है जो अज्ञान जनक है। अतः तामस गुण साधिकाधिक बन्धनकारक है।"

अर्जुन ने पूछा—'सत्त्व, रज और तम इन तीनों गुणों के द्वारा कौन-कौन सी गतियाँ प्राप्त होती हैं?'

भगवान् ने कहा—'जैसे ये उत्तम, मध्यम और अधम गुण हैं, वैसे ही इनके द्वारा उत्तम, मध्यम और अधम लोकों की प्राप्ति होती है। सत्त्वगुण में स्थित पुरुष जो शास्त्रानुसार कार्य करते हैं, प्रकाशमय मार्ग से चलते हैं वे सत्त्वलोक पर्यन्त उत्तम पुरुषलोकों में जाते हैं। जैसा उनका ज्ञान हमें जैसे कर्म हों उन्हीं के अनुरूप देवताओं तपस्वियों, महर्षियों, ब्रतियों तथा ज्ञानियों के लोकों की प्राप्ति होते हैं।'

आराजिस प्रकृति के हैं, रजोगुणों हैं, पुण्यपाप में मिश्रित इस भूलोक की प्राप्ति होते हैं मनुष्य योनि को पाते हैं, वे न ऊपर के देवताओं के लोकों को जाते हैं और न तमोगुणों नीचे के लोकों को ही प्राप्त करते हैं। इस भारतवर्ष को कर्म भूमि में उत्पन्न होकर पाप-पुण्य मिश्रित कर्मों को करते रहते हैं।"

जो जघन्य गुण शक्ति वाले अर्थात् तमोगुणों ही तामस प्रकृति के हैं। वे अन्धकारमय, अज्ञानमय नीचे के लोकों की प्राप्ति होते हैं यही तीनों गुणों की गतियाँ हैं।

अर्जुन ने पूछा—'भगवन्! यह गुण प्रवाह तो निरर्थक है,

६८ श्री भागवत दर्शन भागवती कथा, खण्ड ७६

इसमें पड़ा प्राणी तो इन्हीं के प्रवाह में बहता रहेगा, इनसे बचने का कोई उपाय नहीं है क्या ? यदि कोई इनसे बच जाय, शिगूणातीत हो जाय, तो उसकी स्थिति कैसी होगी ?”

सूतजी कहते हैं—“मुनियो ! अब अर्जुन के इस प्रश्न का भगवान् जेंसे उत्तर देंगे, उसका वरान मैं आगे करूँगा ।”

छप्पय

तीनि युननि ते होहि कहा सो सुनि ले अरजुन ।
पृथक् पृथक् उत्पन्न होहि जैसो होयै युन ॥
ज्ञान सख ते होहि उबारो भीतर बाहर ।
लाम रजोगुन होहि लगे संमह अति सुखकर ॥
होहि तमोगुन ते अधिक, मोह प्रमाद डरावनो ।
होहि मोहवश करम रत, अति अज्ञान भयावनो ॥

पुरुष सतीगुन रहे उच्च लोकनि कूँ जावै ।
जहँ प्रकाश नित रहै स्वरग के सुख सब पावै ॥
रहे रजोगुन माहि मध्य लोकनि में, जनमें ।
पाइ मनुज तन रहे निरत फलप्राप्त करमनि में ॥
समोगुनी तम करम ते, पाइ अधोगति दुख सहै ।
अधम योनि में जनम लै, युनि रौरव नरकनि रहै ॥



गुणातीत और उसके लक्षण

[६]

नान्यं गुणैर्भ्यः कर्तारं यदा द्रष्टातुपश्यति ।
गुणैर्भ्यश्च परं वेत्ति मद्भावं सोऽधिगच्छति ॥
गुणान्तेतानतीत्य श्रीन्देही देहसमुद्भवान् ।
जन्ममृत्युजरादुःखैर्विमुक्तोऽमृतमश्नुते ॥६॥
(श्री भग० गी० १४ अ० १६, २० श्लोक)

छप्पय

भव के कारण त्रिगुन त्रिगुन ई नाच नचावै ।
तिनि पदा है कै जीव अबर बर करम करावै ॥
द्रष्टा निश्चय करै गुननि तजि करता माहीं ।
गुन करवावै करम प्रकृति सै बसहि सदा हीं ॥
इनि तीनिहु गुनतै परे, जाने मोह तत्त्व तै ।
प्राप्त होहि मम रूप क, पृथक होहि बग वस्तु तै ॥

॥ जिस काल में द्रष्टा गुणों से भग्न किसी को कर्ता नहीं देखता है और अपने को गुणों से परे गुणातीत समझता है, तो वह पुरुष मेरे स्वरूप को प्राप्त होता है ॥१६॥

जो पुरुष इन देह से समुद्भव तीनों गुणों को पार करके जन्म, मृत्यु, जरा और दुःखों से विमुक्त बन जाता है—गुणातीत हो जाता है—तब वह अमृत तत्त्व को प्राप्त हो जाता है ॥२०॥

संसार बन्धन का कारण भाव ही है। जीव का जैसा भाव होगा वैसा ही वह अपने को अनुभव करने लगेगा। पृथ्वी, जल तेज, वायु और आकाश, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच तन्मयात्रायें, पंचप्राण, तीन गुण, अन्तःकरण, चतुष्टय इनके संज्ञात से बना यह शरीर है। य मय जड़ है, अतः इनमें किसी शक्ति नहीं। जब चेतन्यांश जीव या पुरुष इनका ईक्षण करता है, देखता है तब इनमें क्रियाशक्ति उत्पन्न हो जाती है। इस चेतन्य के देखने मात्र से ही तीनों गुणों के अनुसार इन्द्रियाँ अपना-अपना काम करने लग जाती हैं, अन्तःकरण अपना कार्य करता है और प्राण अपना कार्य करते हैं। गुणों की प्रेरणा न हो तो, कोई भी घटक अपना कार्य न करे। चेतन्य तो दृष्टा मात्र है, साक्षी है, उसके देखते ही रहने से उसके प्रकाश प्रदान करने से ही यह शरीर गुणों के अनुसार बतता रहता है। इस संघात संमालन में गुणों के द्वारा ही सब कार्य होते हैं। जीव तो तटस्थ भाव से ज्ञान का प्रकाश देता है, उसकी उपस्थिति में उसी की छत्रछाया में तीनों गुण अपनी पुनी पुनी करते रहते हैं जीवात्मा अपने को केवल साक्षी ही न समझकर कर्ता भोक्ता भी अपने को मानने लगता है तभी गड़बड़ी मच जाती है।

क्या गड़बड़ी मच जाती है? यही गड़बड़ी हो जाती है, कि जो अपने को कर्ता मानेगा वही उसके फल के भोगने का अधिकारी होगा। जो अपने निमित्त पेड़ लगावेगा। अपने में पेड़ लगाने वाले अभिमान का आरोप करेगा, तो फल लगने पर उनके भोगने का भी अपने को स्वतः अधिकारी मानेगा। यदि पेड़ लगाने समय ही वह समझे, यह मैं भगवान् के लिये कर रहा हूँ। मैं तो तटस्थ हूँ, निमित्त मात्र हूँ। प्रकृति से बीज उत्पन्न हो गया है, भूतों के संयोग से बड़े बीज अंकुरित, पुष्टित, फल वाला हो

गया है; तो जेसे प्रकृति ने इसे उत्पन्न किया है, तो जिसके लिये—
‘अपने प्रति परमेश्वर के लिये—उसने उपजाया है, तो परमेश्वर
ही उनके फल को भोगे। मुझसे क्या प्रयोजन? मैं तो निमित्त
मात्र था और मुझे निमित्त भी उन्हीं परमात्मा ने बनाया। अतः
इस संघात से इस देह रूपी वृक्ष से और इसके फलों से मेरा कुछ
भी सम्बन्ध नहीं। तो ऐसा भाव रखने वाला जो इस देह रूपी
‘फलों का भोक्ता न होगा।

इस देह रूपी वृक्ष में चार फल लगते हैं। उनका नाम है
जन्म, मृत्यु, जरा और दुःख। जो पुरुष अपने को कर्मों का कर्ता
मानेगा, तो उसे इन कर्मों का फल भी भोगना ही पड़ेगा। कोई
शरीर ऐसा नहीं जिसका किसी न किसी प्रकार जन्म न हुआ हो,
जिसको किसी न किसी कारण से मृत्यु न हुई हो, जिसको किसी
न किसी प्रकार से वृद्धावस्था ने न घेरा हो और जिसे किसी न
किसी प्रकार से अधिव्याधियों ने दुःखित न किया हो। ये जन्म,
जरा, मृत्यु और दुःख शरीर रूप वृक्ष के चार फल हैं, इन्हें
त्रिगुणों ने पैदा किया है। जो चैतन्यांश जीवात्मा गुणों को
उत्पन्न करने वाला न मानकर अपने को ही कर्ता मान लेता है,
तब तो जन्म, मृत्यु, और दुःख रूप जो फल हैं उन्हें खाना ही
पड़ेगा। जन्म में जो दुःख है, मृत्यु में भी दुःख है, वृद्धावस्था में
तो दुःख ही दुःख है इसके अतिरिक्त मानसिक पीड़ाओं को
आधि कहते हैं, शरीर सम्बन्धी ज्वर आदिक रोग सम्बन्धी पीड़ाओं
को व्याधि कहते हैं। इनसे भी भाँति-भाँति के दुःख उठाने पड़ते
हैं। ये दुःख उन्हीं को होते हैं जो तीनों गुणों को भूलकर अपने को
ही कर्ता माने बैठे हैं। जिस समय भाव बदल जाय, अपने को
‘कर्ता भोक्ता न मानकर केवल साक्षी, द्रष्टा तथा तटस्थ हो अनु-
भव करने लगे तो; गुण तो ‘गुणों में’ वर्तते ही रहेंगे। इसका

वर्ण्य और भोक्तृत्व का अभिमान दूर हो जायगा फिर वह चेतस्यांश जन्म, मृत्यु, जरा और व्याधियों से अपने को पुष्कल के भगवद् भाव को प्राप्त हो जायगा। उसका वद्ध जीव भाव दूर हो जायगा।

सूनजी कहते हैं—‘मुनियो ! जब अर्जुन ने त्रिगुणों में प्रतीत होने का उपाय और त्रिगुणातीत के लक्षणों का इष्ट किया, तब भगवान् ने कहा—‘अर्जुन ! मिथ्या अहंकार विष है। और स्वस्व का ज्ञान अमृत है। प्राणी विष खाया तो मृत्यु के अधीन हो जायगा और अमृत पान करेगा, तो अजरामर बन जायगा।’

अर्जुन ने पूछा—‘विष क्या है अमृत क्या है?’
भगवान् ने कहा—‘चैतन्य तो साँझी मात्र है। शरीरों में क्रियाएँ तो गुणों द्वारा तो रही हैं। इन क्रियाओं को गुणों द्वारा होती हुई न मानकर इन्हें अपने द्वारा की हुई जीव मानने लगता है, तब मानों उसने विषपान कर लिया। विषपान करने वाले की मृत्यु हो जायगी। जिसकी मृत्यु है उसका जन्म भा ध्रुव है। जो जन्म मृत्यु के चक्कर में फँसा उसे जरा, व्याधियाँ और सामना करना ही पड़ेगा। किन्तु जो पुरुष तीनों गुणों के अतिरिक्त अन्य किसी को भी नहीं देखता। और अपने गुणों से परे मानता है, तो उसका वद्ध जीवपना छूट जाता है। वह भरे भाव से भावित हो जाता है यही उसका अमृत पान है।’

अर्जुन ने पूछा—‘अमृत पान कर लेने पर उसकी स्थिति कैसी हो जाती है?’

भगवान् ने कहा—‘भार्य, अज्ञान ही विषपान है, ज्ञान ही अमृत पान है। जिस समय पुरुष को यह ज्ञान हा जाय, कि ये तीनों गुण ही देह को उत्पन्न करते हैं। देह की उत्पत्ति के जोड़

सूत ये ही तीन गुण हैं। मैं इन तीनों गुणों से सर्वथा प्रसक्त हूँ।
ऐसा ज्ञान होने पर यह धैर्य देही जीव तीनों गुणों से पार
चला जाता है। इन तीनों का अतिक्रमण करता है इन्हें लांघ
जाता है, त्रिगुणों का उलङ्घन कर जाता है। जब तीनों गुणों
में पार चला गया, तो जन्म, मृत्यु, जरा और व्याधियाँ तो इस
त्रिगुणात्मक देह रूपी वृक्ष के विषम फल हैं इनका भोका न
होकर ज्ञानाभूत के पान का अधिकारी बन जाता है। दुःखों से
सदा के लिये विमुक्त होकर अमरत्व भी प्राप्त कर लेता है, परमा-
नन्द में निमग्न हो जाता है।”

सूतजी कहते हैं—“मुनियो ! जब श्रुति में यह सुना कि
त्रिगुणातीत होने पर इस शरीर में ही जीव अमृतत्व को प्राप्त
कर लेता है, वह अजगमर हो जाता है, सब तो उसे बड़ा हर्ष
हुँगा। अब उसके मन में अनेक प्रकार के प्रश्न उठने लगे। उन
प्रश्नों को वे जैसे भगवान् से पूछेंगे, उनका वर्णन मैं आपके
कईगा।”

छप्पय

गुणके कारण होहि फेरि उत्पत्ति देह की।
चिन्ता गुमवश करे पुन, धन, दार गेह की॥
होवे त्रिगुणातीत करे उल्लङ्घन इति को।
तब होवे निर्विचल दास नहि इति विषयनि को॥
तब फिरि त्रिगुणातीत नर, जनम मृत्यु छुटि जाइगो।
बरा दुःख सब भौलि के, मिटे अमृत पद पाइगो॥

—:ॐ:—

अर्जुन का गुणातीत के लक्षण सम्बन्धी प्रश्न और भगवान् का उत्तर

[१०]

अर्जुन उवाच—

कैलिङ्गैस्त्रीन्गुणानेतानतीतो भवति प्रभो ।
किमाचारः कथं चैतांस्त्रीन्गुणानतिवर्तते ॥

श्री भगवानुवाच—

प्रकाशं च प्रवृत्तिं च मोहमेव च पाण्डव ।
न द्रष्टुं संप्रवृत्तानि न निवृत्तानि कदाचित् ॥*

(श्री० भग० गी० १५ अ० २१, २२ श्लोक)

छप्पय

अर्जुन पूछन लग्यो—प्रभो ! हम कैसे मानें ।
यह है दिगुणातीत कोन तत्त्वन ते जाने ॥
कैसे वाकी रहन सहन निष्ठा कस ताकी ।
कैसे आचरन मुक्त दशा होयें कस स्वाकी ॥
सप सँग कैसे रहत यह, कैसे है आचार तस ।
इन तीगहु गुण लीयि के, होयें दिगुणातीत कस ॥

* अर्जुन ने पूछा—“प्रभो ! इन मोनों गुणों में कौन पुरुष किन
वस्तुओं से मुक्त होता है ? उसका आचार कैसा होता है ? यह प्राणी

अर्जुन का गुणतीत के लक्षण सम्बन्धी प्रश्न और
भगवान् का उत्तर

बाहरी चिन्हों ने जानी भजानी साधु भसाधु नहीं जाने जाते। भीतरी गुणों द्वारा ही यह समझा जाता है, कि यह साधु है या भसाधु। कभी-कभी भसाधु पुरुष भी ऐसा बाह्य वेप बना लेते हैं, कि उनके चक्कर में अच्छे-बुरे लोग आ जाते हैं। हनुमान्जी लक्ष्मणजी के लिये संजोवनी वृट्टी लेने जा रहे थे। उनके मार्ग में विघ्न करने कालनेमि असुर साधु का वेप बनाकर बैठ गया। हनुमान्जी बाह्य वेप देखकर पहिले तो उसके चक्कर में आ गये, किन्तु जब मछली वनी अन्तरा ने उन्हें उसका यथार्थ रूप बता दिया, तब उसकी पोल खुल गयी। हनुमान्जी ने उस दुंदभी साधु को—कपट वेपवारी असुर को—यमराज का द्वार दिखा दिया।

इसी प्रकार रावण ने भी कपट संन्यासी का वेप बनाकर सीताजी के द्वार पर भिठा माँगी। भोली भाली राजकुमारी उसके बाह्य रूप की देखकर उसका आतिथ्य करने की विवश हो गयीं। धर्ममोह होने के कारण उसकी बातों में आ गयीं। उसने साधु के दम्बवेप से अनुचित लाभ उठाया सीताजी को हर ले गया, अन्त में वह श्रीरामचन्द्रजी के हाथों सकुटुम्ब मारा गया।

राहु ने भी असुर होकर देवताओं का सा बनाबटी वेप बना लिया था। मोक्षिनी वने साक्षात् भगवान् ने भी उसे देवता ही समझा। जब सूर्य चन्द्र ने उसका परिचय दे दिया तो समृत

किन उपायों द्वारा इन तीनों गुणों से प्रतीत हो सकता है ? ॥२१॥

भगवान् ने कहा—“हे पुण्डित !—प्रकाश और प्रभुत्व तथा मोह ये त्रिसमं न ही, जो कर्मों में प्रभुत्व होने पर न तो सुरा समझता है और न विभुत्व होने की प्रकाशा रखता है, जो दोनों में समभाव रखता है।” (पहले गुणतीत है) ॥२२॥

पान कर लेते पर भी भगवान् ने उसके सर को धड से पृथक् कर दिया।

इस प्रकार बाह्यवेष क्षण भर को भले ही भ्रम में डाल दें, वास्तव में साधुता तो हृदय की वस्तु है, वह बाह्य किन्हीं से प्रकट न होकर भीतरी गुणों द्वारा ही व्यक्त होती है। इसीलिये कहा है यम और नियमों में से अहिंसा, अत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह इन यमों का-तो-नित्य निरन्तर पालन करना चाहिये और शौच संतोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रसिद्धान इन नियमों का आवश्यकता होने पर भगवत् परायण होकर जैसी परिस्थिति हो, वैसी ही समयानुसार पालन करना चाहिये। क्योंकि यम भीतरी गुण हैं इनका पालन विवेकी सत्य परायण साधु ही कर सकते हैं और नियम तो बाहरी गुण हैं, इनका पालन तो दिखावटी भी-दम्भ के लिये असाधु पुरुष भी कर सकते हैं। इसीलिये जहाँ भी कहीं स्थितप्रज्ञ के, भगवत् भक्त के तथा त्रिगुणातीत पुरुष के लक्षण प्रच्छेदित हैं, वहाँ भगवान् ने यह कहा नहीं बताया है जहाँ पुरुष ऐसे बख पङ्क्तिता है, ऐसा चंदन सगाता है, ऐसी कंठी माला पहिनता है, जहाँ भी ज्ञानी, भक्त तथा त्रिगुणातीत के लक्षण बताये हैं वहाँ भीतरी गुणों पर ही बल दिया है, उसकी भक्तवर्त्ति बँसी होती है, उसका विवेक, वैराग्य, शम, दम उपरति आदि भक्तगुण कैसे होते हैं। जब भगवान् ने तीनों गुणों के लक्षण बताकर इन गुणों से ऊपर उठने को भजुंन से कहा, तब भजुंन को यह जिज्ञासा हुई कि त्रिगुणों से ऊपर उठे हुए त्रिगुणातीत पुरुष के लक्षण क्या हैं। क्योंकि धार्मिक बात तो यह है कि चाहें पृथ्वी में हों या भूतलिक्ष भयवा स्वर्ग में, भूतल पोनि हो या देवयोनि इनमें कोई भी ऐसा व्यक्ति न मिलेगा जो प्रकृति के

अर्जुन का गुणातीत के लक्षण सम्बन्धी प्रश्न और
भगवान् का उत्तर ७७

सत्त्व, रज और तमोगुण इन तीनों गुणों में रहित हो। सभी तीनों गुणों के अन्तर्गत हो है फिर भी भगवान् ने उत्तम, मध्यम और निम्न ये गुणों के तीन विभाग कर दिये हैं। पहिले निम्न और मध्यम तमोगुण तथा रजोगुण का परित्याग कर निम्न सत्त्व गुण में स्थित रहे, फिर अंत में सत्त्व का भी परित्याग कर दे, क्योंकि कौन भी मही-उत्तम ही सही-सत्त्व भी बन्धन का ही कारण है, वह भी तो अन्तर्गत रज्जु ही है, अतः सत्त्व को भी त्यागकर गुणातीत हो जाय। जैसे अघर्म का त्याग करके धर्म का आवरण करो। अघर्म का त्याग करके सत्य का आवरण करो। फिर धर्म अघर्म, सत्य अघर्म दोनों का त्याग कर दो। दोनों का त्याग कर देने पर जिस बुद्धि में दोनों का त्याग किया उसे भी त्याग दो। धर्म और सत्य तो साधन मात्र हैं साध्य तो त्याग स्वरूप भगवात् ही हैं। इसी प्रकार तमोगुण रजोगुण को त्याग कर सत्त्व को इसलिये ग्रहण करते हैं, कि वह भगवत् मार्ग में तम और रज के समान बाधक न होकर साधक है, किन्तु सत्त्वस्थ होना जीवन का लक्ष्य तो नहीं है। लक्ष्य तो गुणातीत होना है और इस शरीर में ही इस जीवन में ही गुणातीत हुआ जा सकता है, इसीलिये अर्जुन ने गुणातीत के सम्बन्ध में तीन प्रश्न किये।

... सुतजी कहते हैं—“मुनियो ! अब अर्जुन ने गुणातीत पुरुष के सम्बन्ध में आपकी जिज्ञासा भगवान् के सम्मुख प्रवृत्त की। अर्जुन ने कहा—“प्रभो आप सोचेंगे तो सही कि यह एक ही बात को बार बार पूछता है, आप यद्यपि स्थितप्रज्ञ के भगवत् भक्तों के लक्षण बता चुके हैं, फिर भी मेरी बुद्धि स्थूल है, मैं खल जाता है, यद्यपि मैं स्थूल बुद्धि वाला हूँ फिर भी आपका भक्त हूँ, आपमें अगुरु हूँ, आप भक्तवत्सल हैं आपकी अपने भक्त का

दुःख दूर करना चाहिये घाप प्रभु है, समर्थ है, गुणातीत पुरुष के सम्बन्ध में मेरे कुछ प्रश्न हैं।"

भगवान् ने कहा—“हाँ, हाँ, कहो। मैं तुम्हारी सभी शंकाओं का समाधान करूँगा। एक ही प्रश्न का तुम्हारे पृष्ठने पर बार-बार उत्तर दूँगा। पृष्ठो, तुम क्या पूछना चाहते हो?”

अर्जुन ने कहा—“प्रभो! मेरा पहला प्रश्न तो यह है कि जो गुणातीत पुरुष है जो इन तीनों गुणों को पार कर गया है उसके लक्षण क्या हैं, हम किन लक्षणों से यह समझें कि यह गुणातीत है।

दूसरा मेरा प्रश्न यह है, कि जो गुणातीत हो जाता है, उसका आचार व्यवहार कैसा होता है? वह स्वच्छन्द यथेच्छाचारी हो जाता है या उसके भी कुछ अपने नियम हैं। उसके आचरण कैसे होते हैं।

तीसरा मेरा प्रश्न यह है, कि गुणातीत होने का उपाय क्या है, किस प्रकार किन साधनों द्वारा पुरुष इन तीनों गुणों का अतिक्रमण करके गुणातीत बन सकता है?

ये ही तीन प्रश्न हैं मेरे प्रभो! यदि आप कृपा करके मेरे इन तीनों प्रश्नों का उत्तर दे देंगे, तो मैं अत्यन्त ही प्रसन्न हूँगा।”

यह सुनकर हँसते हुए भगवान् बोले—“अरे-मेरे फूफा पांडु के पुत्र! तुमने ये बहुत ही सुंदर प्रश्न किये। मैं तुम्हारे प्रश्नों का उत्तर देता हूँ। देखो:- द्वन्द्व; या द्वैत ही ब्रह्मण का कारण है। राग; भी सम्बन्ध का कारण है, श्रौत; द्वेष भी। हमें किस वस्तु में राग है, किससे द्वेष है; इसका साक्षी हमारा अन्तःकरण ही है। अपने अतिरिक्त इसे दूसरा कोई समझ ही नहीं सकता है। स्वयं ही अन्तर्बुद्धि होने पर अनुभव कर सकता है। अतः तीनों गुणा

श्रुत का गुणातीत के लक्षण सम्बन्धी प्रश्न और ७६
भगवान् का उत्तर

के प्रति न राग हो न द्वेष हो समता धृति रहे यही गुणातीत का लक्षण है ।”

श्रुत ने पूछा—“तीनों गुणों में समभाव कैसे हो ?”

भगवान् ने कहा—“देखो, सत्त्वगुण का कार्य है, इन्द्रियों में सब ओर से प्रकाश लाना, रजोगुण का कार्य है, कर्मों में प्रवृत्ति करना और तमोगुण का कार्य है, मोह उत्पन्न करना । वाह्यकरण और अन्तःकरण में जब प्रकाश हो जाय, तब समझना चाहिये सत्त्वगुण उदय हो गया । यह सात्त्विक पुरुष है । जब कर्मों में निरंतर प्रवृत्ति हो वनी रहे, लोभ, प्रवृत्ति, अशान्ति तथा स्पृहा घेरे रहें तब समझे, रजोगुण उदय हो गया । यह पुरुष रजोगुणों है, और जब माह घेरे रहे, निद्रा, आलस्य और प्रमाद का आधिपत्य हो जाय तो समझे तमोगुण बढ रहा है, यह मनुष्य तमोगुणों है, किन्तु जिस समय तीनों गुणों के जो कार्य प्रकाश, प्रवृत्ति और मोह है, इनके आने पर जिसके अन्तःकरण में न तो इनके जाग्रत होने पर दुःख बुद्धि से द्वेष ही उत्पन्न होता है और न इनके निवृत्त हो जाने पर सुख बुद्धि से राग ही होता है । न तो उसे इनके आने पर बध्द हो जाता है न मोह में राग में फँसकर सुख बुद्धि से इनकी आवाकाही करता है अर्थात् तीनों गुणों की प्रकाश प्रवृत्ति और मोह की प्रवृत्तियों में जो समभाव से स्थित रहता है, वही गुणातीत है ।”

श्रुत ने पूछा—“गुणातीत के ओर भी जो लक्षण हों, उन्हें भी कृपा करके बतावें ।”

सूतजी कहते हैं—“मुनिगो ! अब भगवान् गुणातीतों के ओर भी जो लक्षण बतावेंगे उनका वर्णन मैं आगे करूँगा ।”

८० श्री भागवत दर्शन भागवती कथा, खण्ड ७६ --

छप्पय

बोले श्रीभगवान्-सुनाई लक्षण अवई ।
गुनातीत है जाइ धृति कैसी हो तयई ॥
सत्त्व रजोगुन कार्य तमोगुन के बितने गुन ।
सत्त्व प्रकाश प्रवृत्ति रजोगुन मोह तमोगुन ॥
आजाने यदि स्वतः जे, तो न द्वेष मनमें घरे ।
नहि आवै इच्छा न अस, गुनातीत कारज करे ॥



त्रिगुणातीत के आचरण

[११]

उदासीनवदासीनो गुणैर्यो न विचार्यते ।
गुणा वर्तन्त इत्येव योऽवतिष्ठति नेङ्गते ॥
समदुःखसुखः स्वस्थः समलोप्टात्मकाञ्चनः ।
तुल्यप्रियाप्रियो धीरस्तुल्यनिन्दात्मसंस्तुतिः ॥६॥
(श्री.भ. गी० १४ म०, २३, २४ श्लो०)

छप्पय

हे जाँचै ही जाय नही होवै तो नाहीं ।
उदासीनवत रहे सयहि करमनि के माहीं ॥
विचलित नहि करि सकै गुननि के कारण जेते ।
चरति रहे नून गुननि जगत में गुन है तेते ॥
सदा सच्चिदानन्द मह, सगन रहे इत्यित रहत ।
विचलित होवै कृपहु नहि, गुनातीत ताकू कहत ॥

* जो उदासीन की तरह रहता है, जिसे गुण विचलित नहीं कर सकते, गुण ही गुणों में वर्त रहे हैं, जो ऐसा मानेता है । जो स्वस्थ में स्थित रहता है, बजायमान नहीं होता है । २३॥
जो सुख-दुःख में सम है तथा स्वस्थ में स्थित है, जिसको मिट्टी, पत्थर, सोना सम्मान है, जो धीर है, जो प्रिय-प्रिय में समान है तथा जिसे निन्दा-स्तुति बराबर है ॥२४॥

गुण तो गुणों में सदा बतते ही रहेंगे। संसार में निन्दा करने वाले प्रशंसा करने वाले भी सदा बने ही रहेंगे। इन गुणों के रहते हुए जो इनमें समभाव से स्थित रहे वही गुणातीत है। अर्थात् गुण अपना कर्म करते रहें, हम उनसे तटस्थ होकर अपना काम करते रहें, यही गुणातीत के लक्षण है।

एक देस भक्त की फाँसी की सजा हुई जिस दिन फाँसी लगने वाली थी, उस दिन फाँसी लगने के घन्टे भर पूर्व वे व्यायाम कर रहे थे। उनके एक साथी ने पूछा—“भाई, घन्टे भर पश्चात् तो तुम्हें फाँसी लगने वाली है, फिर भी तुम निरर्थक नियमानुसार समय पर बिना पश्चाहट के व्यायाम कर रहे हो, यह क्या बात है?”

उसने कहा—“भाई, जब फाँसी अपने ठीक समय पर लगेगी, वह समय पर अपना काम करोगी, तो मैं अपने काम की क्यों छोड़ूँ? मैं भी जब तक समय है, उसका नियमानुसार उपयोग करूँ। जैसे जीवन में और काम है, वैसे ही फाँसी भी है, इसमें धराने की कौन-सी बात है!” मृत्यु की भी साधारण सी दैनिक घटना समझना यही गुणातीत के लक्षण है।

एक जहाज समुद्र में डूब रहा था। उसके मुख्य अधिकारी ने बुध्दता की सही प्रणाली से सब लोग एकत्रित हुए। सब ने साथ ही अन्तिम प्रार्थना की। सब लोग मग में धर-धर काँप रहे थे, कोई रो रहे थे, कोई चिल्ला रहे थे, कोई घर द्वार, कुटुम्ब परिवार की चिन्ता में मग्न थे, किन्तु मुख्याधिकारी बैठ-बैठा अपनी घड़ी में चाभी दे रहा था।

एक ने पूछा—“श्रीमान्! एक क्षण पश्चात् जो जहाज डूब ही जायगा! आप व्यर्थ घड़ी में चाभी क्यों दे रहे हैं?”

अधिकारी ने कहा—“हतने बजकर इतने मिनट पर निरर्थक

चाभी देने का मेरा नियम है, जब तक जोवित है नियम का रड़ता से पालन करेगा। मृत्यु तो अवश्यम्भावी है, सभी की मृत्यु किसी न किसी दिन अवश्य होगी। जो अवश्यम्भावी वस्तु है, उसकी चिन्ता करने से क्या लाभ हम तो उसके स्वागत के लिये समुपस्थित हैं।”

एक महारमा ये वे गृहस्थो ये, किन्तु घर से बाहर एक कोठरी में रहते थे। एक बार उनका पौत्र नया विवाह करके अपनी स्त्री के सहित उन्हें प्रणाम करने आया। वे मुस्करा दिये। एक ने पूछा—“बाबा अब तो आपको प्रसन्नता होगी कुछ दिनों में आप प्रपौत्र का मुख देख सकेंगे।”

इस पर वे बोले—“नित्य विवाह होते हैं नित्य पुत्र पौत्र होते हैं नित्य की साधारण संघटना है, इसमें प्रसन्नता की कौन सी बात।”

ये घर के किसी काम में न तो सहयोग देते न किसी से घर के सम्बन्ध में कुछ पूछते। समय पर भोजन आ जाता कर लेते ध्यान में मग्न रहते। घर वाले भी इतने डरते थे कि उनसे कुछ दुख की कोई बात नहीं कहते।

छोटे पुत्र की वहु-अपने बच्चे को लेकर नित्य प्रणाम करने आती। वे देखते भी नहीं थे। एक दिन वह अकेली हो प्रणाम करने आई धीरे-पूट-पूटकर रोने लगी।

उन्होंने रोने का कारण पूछा—“उसने तो कुछ नहीं बताया दूसरे ने कहा—“इसका छोटा बच्चा मर गया है।”

तब वे सहज भाव से बोले—“उसका इतने ही दिनों का संस्कार रद्द होमा। श्रमना समय पूरा करके चला गया। इसमें रोने की क्या बात है सभी को वही जाना है। जाकर भगवान् का नाम लो।”

विवाह में और मृत्यु में जिसके अन्तःकरण की स्थिति समान रहे वही गुणातीत पुरुष है।

एक कहारमा ये, वे अपनी साधना के समय में एक हाथ में सुवर्ण की एक मिल्नी लेते दूसरे में मिट्टी लेते। फिर मन से पूछते—“मन ! बता किस मुट्ठी में सुवर्ण है, किसमें मिट्टी है।”

मन तो बता ही देता इसमें सुवर्ण है, इसमें मिट्टी है। तब आप कहते—अरे, मन तेरा अभी भेद-भाव नहीं गया। देख दोनों ही में मिट्टी है और वे मिट्टी तथा मिट्टी दोनों को मिला कर गङ्गा में फेंक देते। वे तब तक ऐसा करते रहे जब तक दोनों में समभाव नहीं हुआ।

एक भक्त दम्पति लकड़ी बीनने वन में जा रहे थे पति धागे थे, पत्नी पीछे थी। आगे चलते-चलते उन्हें एक सुवर्ण मुद्राओं से भरी गठरी मिली। उनके मन में धाया इन सुवर्ण मुद्राओं को कोई भूल गया है ऐसा न हो, इन्हें देकर मेरी पत्नी का मन विचलित हो जाय, अतः वे उसके ऊपर मिट्टी डालने लगे। इतने में ही खो भी आ गयी, उसने पूछा—‘प्राणनाथ ! आप यह क्या कर रहे हैं ?’ तब उन्होंने सत्य-सत्य बात बता दी।

यह सुनकर पत्नी ने हँसते हुए कहा—‘प्राणनाथ ! अभी तक आपका विषम भाव नहीं गया। सुवर्ण भी पीली मिट्टी ही है और जिस बाजू से आप इसे ढक रहे हैं, वह भी सफेद मिट्टी ही है। मिट्टी के ऊपर मिट्टी डालने से लाभ ही क्या है ?’

उन भक्त का नाम रत्ना-भक्त था। वे बोले—“तू तो युक्त से भी रत्ना-भक्त हो। अतः वे समर्थों भक्त रत्ना-भक्ता के नाम से प्रसिद्ध हुए। गुणातीत सुवर्ण, चाँदी, सोहा, ताँबा, लाल पीली मिट्टी सभी की मृत्तिका ही मानता है।”

एक परमहंस' थे। निश्चित रहते, बिना माँगें 'भो' प्रारब्धवश मिल जाता उसी में प्रसन्न रहते। उनका शरीर हृष्ट पृष्ठ तथा विकना था। एक दिन गङ्गा किनारे वे बालू में निश्चित पड़े थे। कुछ पशु चराने की चरवाहे आ गये। महात्मा की मोटी-मोटी विकनी जाँघों को देखकर आपस में बोले—“इस बाँवा को जाँघें कितनी विकनी मोटी हैं, ताशो इन पर झारह मोटी खेतें। यह कहकर वे बाकू से उनकी जङ्घा पर लकीर करने लगे। लकीर करते समय रक्त गहने लगा। उसी समय कोई बुद्धिमान पुरुष आ गया। उसने चरवाहों को डाँट फटकार कर भगाया। भोगे कपड़े से रक्त पोंछा और कहा—भगवन् ! इन मूखों ने आपको बहुत कष्ट पहुँचाया आप यहीं रहें मैं नगर में जाकर आपधि ले आऊँ।”

परमहंस जो ने कहा—“अरे, कष्ट किस बात का ? वे निरप्य पृथ्वी पर शरीर मोटी खेलते हैं, यह शरीर भो तो पायिव ही है। इसमें हानि हो क्यों हुई ? आपधि भो पायिव है। उसे लेने क्यों जाते हो। पृथ्वी तो यहाँ भो है। मिट्टी पर मिट्टी डाल दो।”

ऐसी स्थिति जब हो जाय तभी समझना चाहिये हम गुरुओं की परिधि को पार करके त्रिगुणातीत हो गये। त्रिगुणातीत पुरुषों के आचार ऐसे ही होते हैं।

सूतजी कहते हैं—“मुनियो ! जब अर्जुन ने भगवान् से ये तीन प्रश्न किये कि (१) गुणातीत के लक्षण क्या हैं ? (२) उस का आचार वतों केसा होता है। और (३) गुणातीत कैसे हुआ जा सकता है। तब पहिले तो उन्होंने गुणातीत के लक्षण बताये अब दूसरे इस प्रश्न का कि गुणातीत का वतव कैसे होता है, इसका उत्तर देते हुए कहते हैं—“अर्जुन ! गुणातीत सभी द्रव्यों में उदासीन रहता है। दुःख हो चाहे सुख हो, हानि हो या लाभ

हो, जीवन हो या मरण हो सबमें उसके अन्तःकरण की वृत्ति सम रहती है। वह उदासीन के समान वर्तित्व करता है। वह गुणों के घमों द्वारा चलायमान नहीं होता। सुख में फूल कर कुप्या नहीं होता, दुःख में दुखी होकर विचलित नहीं होता। वह सोचता है—'गुण ही गुण में वर्त रहे हैं वे जो घटनायें घटित हो रही हैं, गुणों के द्वारा ही हो रही हैं, मैं तो तटस्थ हूँ, इनसे मेरा क्या प्रयोजन ? यह साचकर सुख पाने की या दुःख की निवृत्ति के लिये किसी भी प्रकार की चेष्टा नहीं करता है। सबमें समभाव से वर्तता है, यही गुणातीत का आचार है।'

भर्तृन् ने पूछा—'समरूप से वह कैसे वर्तता है ?'

भगवान् ने कहा—'सुख आ जाय तो भी तैसा दुःख आ जाय तो भी तैसा। उसकी दृष्टि में सुख और दुःख में कोई भेद-भाव नहीं होता। वह सोचता है गुणों का कार्य है वे अपने-अपने कार्यों को करते रहे। मेरा इसमें क्या बनता बिगड़ता है। यही साचकर वह सदा सदैव अपने स्वरूप में ही स्थित रहता है। अपने स्वरूप से कभी विचलित नहीं होता।'

उसकी दृष्टि में पृथ्वी का डेला, पत्थर और सुवर्ण सभी समान है। उसे कोई घटना न प्रिय है न अप्रिय। मनोभुक्त होने से उसे हर्ष नहीं, मन के प्रतिफल होने पर भी उसे कोई विषाद नहीं। प्रिय अप्रिय में उसका अन्तःकरण सम रहता है। विकारों के हेतु समुपस्थित होने पर भी उसके मन में किसी प्रकार की विह्वल नहीं आती। वह सदैव धर्मवान् बना रहता है। कोई स्तुति करता है तो उसे हर्ष नहीं होता निन्दा करने या ने पर क्रुद्ध नहीं होता। वह निन्दा और स्तुति में समान रहता है। ऐसा ही गुणातीत पुरुष का आचार है, ऐसी ही उसकी रहनी सहनी है।

अर्जुन ने पूछा—“भगवन् ! गुणातीत का आपने लक्षण-समभाव रखने वाला बताया । वह तुल्य भाव रखकर कैसे आच- करता है इसे और बताकर मेरे तीसरे प्रश्न का भी उत्तर दें कि किस प्रकार त्रिगुणातीत हुआ जाय । त्रिगुणातीत होने का मुख्य उपाय क्या है ?”

सुतजी कहते हैं—“श्रुतियो ! भव भगवान् जैसे इस तीसरे प्रश्न का उत्तर देकर इस विषय का उपसंहार करेंगे । उसका जवाब मैं आपसे आगे कहूँगा ।”

छप्पय

दुःख सुख में समभाव निरन्तर आत्मा इस्थित ।
मिट्टी पत्थर कनक सबति कुँ समई समुक्त ॥
ज्ञानवान् अति विज्ञ सरस सबई को प्यारे ।
प्रिय-अप्रिय सम मानि जगत तैं करे किनारे ।
धैर्यवान् सब कछु सहै, विन्दा इच्छति सम रहत ।
सगदरसी जग पुरुष जो, गुणातीत उगकूँ कहत ॥



गुणातीत होने के उपाय

[१२]

मानापमानयोस्तुल्यस्तुल्यो मित्रारिपक्षयोः ।
 सर्वारम्भपरित्यागी गुणातीतः स उच्यते ॥
 मां च योऽव्यभिचारेण भक्तियोगेन सेवते ।
 स गुणान्समतीत्यैतान्त्राक्षभूयाय कल्पते ॥
 ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहममृतस्याव्ययस्य च ।
 शाश्वतस्य च धर्मस्य सुखस्यैकान्तिकस्य च ॥ॐ
 (श्री. भग. गी. १४ अ. २५, २६, २७ श्लो.)
 लक्ष्यम्
 करे भले ही मान कमल माला पहिनावै ।
 करे चाहिँ अपमान बचन कटु आइ सुनावै ॥
 दोउनि मे सम रहै मित्र अरु शत्रु पक्ष महँ ।
 निन्दा इस्तुति एक पक्ष ही वा विपक्ष महँ ॥
 करे नहीं संकल्प तै, करमनि कूँ आरम्भ जो ।
 कर्तापन ते रहित जो, गुणातीत है पुरुष तो ॥

* जो मान अपमान से समान है, शत्रु मित्र दोनों पक्ष जिसे बराबर है, जिसने सभी धारम्भों को रद्द कर दिया है, वही पुरुष गुणातीत कहलाता है ॥२५॥

और जो धर्मविचारी भक्तियोग से मुक्त हो निरंतर भजता है-

तीनों गुण तीनों लोकों को देने वाले हैं। मरते समय सत्त्व प्रधान हो तो उसे स्वर्गादि श्रेष्ठ लोकों की प्राप्ति हुआ करती है, रजोगुण प्रधान पुरुष मनुष्य लोक अर्थात् पृथ्वी पर ही जन्म लेते हैं और तमोगुण प्रधान पुरुष नरकादि लोकों की प्राप्ति होते हैं, किन्तु जो इन त्रिगुणों से असीत हो गये हैं, तीनों गुणों को लीप्त गये हैं, जिन्होंने अपने जीवन काल में ही-शरीर के रहते हुए ही-मान अपमान, शत्रु-मित्र आदि में समभाव कर लिया है, ऐसे पुरुष न तो स्वर्ग जाते हैं न नरक जाते हैं और न मनुष्य लोक में ही जन्म लेते हैं, ऐसे जीवमुक्त पुरुषों को तो भगवान् वासुदेव की ही प्राप्ति होती है, वे तो भगवान् की ही प्राप्ति कर लेते हैं, क्योंकि भगवान् त्रिगुण हैं, गुणातीत हैं, सत्त्व, रज और तम इन तीनों से परे हैं।

अब जो भर्तृन् का तीसरा प्रश्न है, कि गुणातीत हुआ कैसे जाय, गुणातीत होने का साधन क्या है?—इसी पर विचार करना है। यही इस गुणधर्म विभाग योग का अन्तिम सार है। यही इस अध्याय का नवनीत है।

यह तो सिद्धान्त की बात है, जो जैसी श्रद्धा करेगा वह वैसा ही हो जायगा। सात्त्विक श्रद्धावाला सत्त्वगुण सम्पन्न होगा। रजोगुणी श्रद्धा वाला रजोगुणी स्वभाव का होगा और तमोगुणी श्रद्धा वाला तमोगुणी प्रकृति का होगा। जो त्रिगुण श्रोक्त्वा भगवान् में श्रद्धा भक्ति करने वाला होगा, वही गुणातीत

इन तीनों गुणों को लीप्त कर ब्रह्मभाव को प्राप्त होता है, वही गुणातीत है ॥२९॥

यै धर्म्य अमृत ब्रह्म की, साधवत धर्म की और एकात्मिक सुख की प्रतिष्ठा है ॥२७॥

बन सकेगा। अतः गुणातीत ब्रह्म का एक मात्र उपाय है भक्त-मिथारिणी भक्ति। गीता शास्त्र वर्णित चर्म अर्थात् कर्मयोग का समर्थन करता है। कर्मयोग के द्वारा भी मुक्ति हो सकती है। सकाम कर्मयोग जिसका एकमात्र लक्ष्य स्वर्ग प्राप्ति ही है और जिसके द्वारा बार-बार जन्मना और मरना पड़ता है, उस सकाम कर्मयोग को गीताशास्त्र निन्दित करता है, किन्तु कर्मयोग और ज्ञानयोग दोनों की स्तुति करता है, दोनों का ही मोक्ष का साधन मानता है, किन्तु उत्तक विधेय बल निष्काम कर्मयोग अर्थात् भक्तिमार्ग पर ही है। भक्तिमार्ग को वह कर्म और ज्ञान के बीच का मध्यमार्ग मानकर उस पर बारम्बार बल देता है, उस भक्तिमार्ग को ही उन्होंने युक्ततम सव्येष्ट, सर्वोपयोगी, सरस सुगम साधन बताया है। बारहवें अध्याय में उसका विशेष रूप से स्वरूप बताया है, कि भक्तिमार्ग उत्तम को कहते हैं। जो सभी कर्म भगवत् अर्पण बुद्धि से किये जायें, भगवान् के ही निमित्त किये जायें। भगवान् गुणों से परे हैं, उनके निमित्त किये हुए कर्म भी गुणों से परे होंगे। अतः जिन्हें गुणातीत होना हो, वे जो भी कार्य करें उन्हें भगवान् के ही निमित्त करें तभी वे गुणातीत की पदवी को प्राप्त हो सकेंगे।

श्रीमद्भागवत श्रीमद्भगवद्गीता का भाष्य ही है। बिना श्रीमद्भागवत के पढ़े गीता समझो ही नहीं जा सकती। भागवत में भी भगवान् ने उद्भवजी से विषय रूप से तीनों गुणों की वृत्तियों का वर्णन किया है। वहाँ तीनों गुणों के स्वभाव कार्य और वृत्तियों का वर्णन करते-करते निर्गुण होने की भी साथ-साथ विधि बताते गये हैं। जैसे भगवान् ने कहा—“देखो उद्भव! जब अपने धर्म का अवधारण मुझे समर्पित करके अथवा निष्काम भाव से जो कर्म किया जाता है तो वह सत्त्विक कर्म है, जो

‘फल को कामना ने किया जाता है, वह रजोगुणी कर्म है और जो कर्म दूसरों को दुःख देने अथवा दिखावटीपन से किया जाता है, वह तामसिक कर्म है, किन्तु मेरे ही निमित्त जो कर्म किया जाता है, वह निर्गुण कर्म है, अर्थात् गुणातीत होने वाले को समस्त कार्य केवल भगवत् परिचर्या के ही निमित्त करने चाहिये।’

शुद्ध आत्मा का ज्ञान सात्त्विक ज्ञान है, आत्मा को कर्ताभोक्ता समझना राजस ज्ञान है, शरीर को ही आत्मा समझना तामसिक ज्ञान है, किन्तु इन तीनों से विलक्षण भगवत् स्वरूप का वास्तविक ज्ञान ही निर्गुण ज्ञान है। इसलिये गुणातीत बनने वाले को ब्रह्म, परमात्मा अथवा भगवान् के वास्तविक स्वरूप का ज्ञान उपलब्ध करना चाहिये।

वन का वास सात्त्विक निवास है, गाँवों में निवास करना राजस है। जहाँ लूझा होता हो और भी निकृष्ट कर्म होते हैं ऐसे स्थान में रहना तामसिक निवास है। किन्तु भगवान् के दिव्य देशों में भगवन्मन्दिरों में उपासनागृहों में निवास निर्गुण निवास है, जिसे गुणों से पार जाने की अभिलाषा हो, उसे सदा सर्वदा उपासना मन्दिर भगवत् निकेतनों में निवास करना चाहिये।

अनासक्त भाव से जो कर्म कर्ता है, वह सात्त्विक कर्ता है, रागद्वेष होकर कर्म करने वाला राजसिक कर्ता और पूर्वापर का विचार बिना किये कर्म करने वाला तामसिक कर्ता है, किन्तु जो पुरुष केवल, मेरी ही शरण में रहकर, किसी भी प्रकार के अहंकार के बिना कर्म कर्ता है वही निर्गुण कर्ता है। धतः गुणातीत बनने के इच्छुक को निरहंकार होकर भगवत् प्रपत्ति पूर्वक केवल भगवत् कर्तृत्व, भगवत् पूजा अर्चा सम्बन्धी कर्मों को करना चाहिये।

आत्मज्ञान विषयक श्रद्धा सात्त्विक श्रद्धा है, कम विषयक श्रद्धा राजस श्रद्धा और जो श्रद्धा अधम में होती है वह तामस श्रद्धा है, किन्तु जो श्रद्धा मेरी सेवा, पूजा, अर्चना, वन्दना में होती है वह निर्गुण श्रद्धा है। अतः गुणों से पार जाने वालों को मेरी सेवा में ही सत्तत श्रद्धा करनी चाहिये।

जो भोजन सीदा सादा, सारोम्यदायक, अनायास प्राप्त पवित्र हो, वह भोजन सात्त्विक भोजन है, जो रसनेन्द्रिय को रुचिकर, स्वाद को दृष्टि में युक्त हो वह भोजन राजस भोजन है और जो सट्टा चरपरा बुलदायी अपवित्र भोजन हो वह तामस भोजन है, किन्तु जो भगवत् प्रसाद है, भगवान् का नैवेद्य है वह निर्गुण है। अतः सदा सर्वदा भगवत् प्रसाद को ही गुणातीत बनने को पाने चाहिये।

आत्मचिन्तन अथवा अन्तर्मुखता से जो सुख प्राप्त होता है वह सात्त्विक सुख है, वहिर्मुखता से विषयों से जो सुख प्राप्त हो वह राजस सुख है तथा दीनता से अथवा भ्रजानता से प्राप्त होने वाला सुख तामस सुख है, किन्तु जो सुख भगवान् से भगवत् चिन्तन से प्राप्त हो वह अप्राकृत और गुणातीत है, इसलिये सच्चा सुख प्राप्त करने की इच्छा वाले गुणातीत को सदा सर्वदा भगवत् चिन्तन ही करते रहना चाहिये।

इन सबका सार यह है, हुआ कि गुणातीत होने का एक मात्र उपाय यही है, सदासर्वदा भगवान् वाशुदेव की परम प्रेम रूपा ध्येयभित्तिरणी भक्ति ही में लीन रहना चाहिये। समस्त चेष्टायें उन्हीं के निमित्त करनी चाहिये।

मूनजी कहते हैं—“मुनियो ! जब भजुन ने गुणातीत के लक्षण और गुणों का भक्तिकर्मण बिन साधनों द्वारा हो सकता है, यह पूछा तो भगवान् ने कहा—“भजुन ! द्रव्यों की विता ही

गुणों के प्रवाह में बहा ले जाती है। जो निर्द्वन्द्व हो गया वही मानों तीनों गुणों का अतिक्रमण कर गया। उसके आचरणों से ही जाना जा सकता है, कि वह गुणातीत है।”

अर्जुन ने पूछा—“किस प्रकार के आचरणों से जाना जा सकता है ?”

भगवान् ने कहा—“उसका किसी ने सम्मान किया, पूजा की माला चढ़ा दी अर्पण किया दूसरे ने गाली दी, घुरा भला कहा, अपमान किया, तो दोनों ही दशा में जो सम रहे मान में तथा अपमान में जिसके चित्त की वृत्ति समान रहे। जिसके लिये सम्मान, सत्कार, आदर, स्तुति प्रशंसा और अपमान, तिरस्कार अमादर, निन्दा तथा बुराई दोनों ही एक ही लगे। जो सम्मान में प्रसन्न तथा अपमान से खिन्न न हो, तो समझो यह गुणातीत है।”

अर्जुन ने पूछा—“मानापमान को समझने वाले गुणातीत के शत्रु मित्र तो रहते ही होंगे, उनके प्रति उसके कैसे भाव रहते हैं ?”

भगवान् ने कहा—“शरीर रहते सभी के शत्रु मित्र बने ही रहते हैं, किन्तु गुणातीत पुरुष शत्रु तथा मित्र दोनों पक्षों में समभाव रखता है। यह नहीं कि शत्रु का निग्रह करने का भाव रखे या मित्र पर विशेष अनुग्रह करे। वह न मित्र के प्रति राग करता है न शत्रु से द्वेष भाव ही रखता है। उसकी अपनी दृष्टि में दोनों ही बराबर रहते हैं।”

जो किसी भी कर्म की कामना मन में रखकर प्रारंभ नहीं करता। वह व्योरोपरण करते समय यह नहीं सोचता—यह संकल्प नहीं करता कि इस पर जो फल भावेंगे उनका मैं उपभोग करूँगा। जिसका कोई भी काम फल की दृष्टि से—अपने सुख के

लिये अपनी जीवन सुविधा के निमित्त नह' होना। उसी'को जानी पुरुष गुणातीत कहते हैं।"

अर्जुन ने पूछा—“गुणातीत होने का साधन क्या है?”

भगवान् ने कहा—“गुणातीत होने का एक मात्र साधन है मुक्त परमात्मा के प्रति श्रव्यभिवारिणी भक्ति करना।"

अर्जुन ने पूछा—“श्रव्यभिवारिणी भक्ति क्या होती है?”

भगवान् ने कहा—“जो धर्म के अनुसार प्रवर्जित है, धर्मपत्नी है, पतिपरायणा सती है, वह अपने प्राणपति से प्रेम न करके पर पुरुष से पति के समान सम्बन्ध रखती है, वह व्यभिचारी कहलाती है। मेरे भक्त का कर्तव्य है वह अपने अन्तःकरण को मुझमें ही लगा दे, मेरी ही अनन्य भक्ति करे मुझे ही सर्वत्र मानकर मेरे ही निमित्त नमस्कार करे अर्थात् जो भी करे मेरे ही लिये करे। वह तो मेरा अनन्य भक्त है किन्तु जो मेरे ऊपर विश्वास न करके दूसरों की शरण में जाता है, दूसरों से सुख की आशा रखता है, वह सबका भक्त नहीं व्यभिचार सम्पन्न भक्त है। वह गुणातीत नहीं बन सकता। किन्तु जो श्रव्यभिवारिणी भक्तियोग के द्वारा एक मात्र मेरा ही जीवन पूजन, अर्चन, वन्दनादि करता है, वही पुरुष सत्त्व, रज और तम इन तीनों गुणों की भली प्रकार से छद्मन करके संविदार्जवधन ब्रह्म की प्राप्ति होने की योग्यता प्राप्त कर लेने का अधिकारी बन जाता है। अर्थात् उसे भगवत् प्राप्ति हो जाती है।"

अर्जुन ने पूछा—“भगवन्! ब्रह्म भूयाय' वक्षते' आपने कहा। ज्ञान मार्ग वाले ब्रह्मभाव' निगूण ब्रह्म की प्राप्ति को कहते हैं। सगुणोपासक उपासना द्वारा आपके संगुण साकार स्वरूप की प्राप्ति-आपके लोक की प्राप्ति-हो कहते हैं। आप भी कभी तो कहते हैं वह ब्रह्मभाव की प्राप्ति हो जाती है, कभी कहते हैं—

‘वह अमृत्वाय’ कल्पते’ वह अमर हो जाता है, कभी कहते मुक्त अव्यय में मिल जाता है, कभी अव्यय सुख, कभी आत्यंतिक सुख, कभी ऐकान्तिक सुख कहते हैं और कभी कहते हैं वह मुझे ही (अर्थात् सगुण साकार धीकृष्ण स्वरूप को) प्राप्त होता है। ये सब सगुण निर्गुण, ब्रह्म, अमृत एक ही वस्तु है या पृथक्-पृथक् भाव है?’

अर्जुन के इस प्रश्न को सुनकर हंसते हुए भगवान् कहने लगे—“अर्जुन ! जल कहो, नीर कहो, वारि कहो, पय कहो, पानी कहो इन सभी शब्दों की प्रतिष्ठा बढ़ने वाले, उन पदार्थ में है जिसका स्पर्श शीतल हो, जो जिह्वा के अग्र भाग पर रखने से सोडा लगे, जिसे पीने में तृप्ति हो, जो जीवनदाता हो और जो सभी शरीरों में, नदियों में तानावों में, समुद्रों में और कृपादि जलाशयों में भरा रहता हो। उसे किसी भी नाम से पुकारो वस्तु एक ही है। एक में ही ये सब भाव प्रतिष्ठित हैं। इसी प्रकार मैं ही आत्मा हूँ, मैं ही पुरुष हूँ, मैं ही क्षेत्रज्ञ हूँ। अमृत मेरा ही नाम है, क्योंकि मैं बिनाश रहित हूँ। अव्यय मेरा ही नाम है, क्योंकि मेरा कभी व्यय नहीं होता मैं विपरिणाम रहित हूँ। मनातन या शाश्वत भी मैं ही हूँ, क्योंकि अव्यय तो रहित हूँ। धर्मरूप भी मेरा ही है; क्योंकि सब मुझे ही धारण करते हैं। या सभी का धारण स्थान मैं ही हूँ, निष्कारण धर्म-संसार साधक मुझे प्राप्त करते हैं। सुख-स्वरूप भी मैं ही हूँ, क्योंकि शाश्वत सुख परमात्मद रूप मैं ही हूँ वह सुख, इन्द्रिय अथवा इन्द्रियों के विषयों द्वारा मिलने वाला न होकर ऐकान्तिक सुख है अर्थात् निराशी सुख है। इसलिये मुक्त ब्रह्म मैं ही, इन सब भावों की, इन सब सम्बोधनों की इन सब नामों की प्रतिष्ठा है। जो वास्तविक पारमार्थिक चरित्र है, जिसकी प्राप्त के लिये समस्त प्रयत्न किये जाते हैं, वह एक-

येव परमनरु मे हो हूँ । मुझे जान लेने पर सब कुछ जाना जा सकता है । मैं इन संसार को दबने वाले तीनों गुणों से अतीत हूँ । सबका पर्यवेक्षण मुझमें ही होता है, मैं ही पुरुषोत्तम हूँ, मुझे जो पुरुषोत्तम जानकर भजता है वास्तव में वही मेरा भजन करता है ।"

अर्जुन ने पूछा—“भाप पुरुषोत्तम का भजन कैसे करें ?”

भगवान् ने कहा—“इस संसार रूप वृक्ष को कुठार से काटकर ही मुझ पुरुषोत्तम को प्राणी प्राप्त कर सकता है ।”

अर्जुन ने पूछा—“इस संसार का कौन सा स्वरूप है ? और इसे काटकर आप पुरुषोत्तम को कैसे प्राप्त किया जा सकता है ? कृपा करके इसका वर्णन भाप मुझसे करें ।”

सूतजी कहते हैं—“मुनियो ! अर्जुन के पूछने पर भगवान् जैसे पुरुषोत्तम योग का वर्णन करेंगे, उसको मैं भाप से भगले पुरुषोत्तम योग नाम के अध्याय में कहूँगा ।”

छप्पय

मकियोग तै मोह निरन्तर निशिदिन गावे ।
अव्यभिचारी यकि मोह तजि अन्य न ध्यावे ॥
सेवा मेरी करै पद जल सुभक्त चढ़ावे ।
सो में सम्यक् रहे अन्त में मोह पावे ॥
सली मीति तीनहु गुननि, लीखि सखिदानन्दन ।
प्रमद प्राप्त होवै अवसि, अरजुन ! तू तो भक्त बन ॥

